चौथी दुनिया

मूल्य 20 रुपये

दिल्ली रविवार 31 मई 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

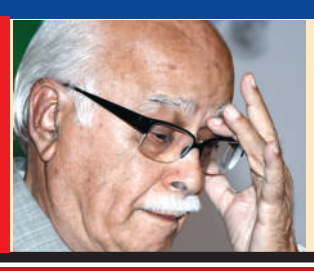

3
भाजपा को सलाहकारों ने डुबोया

5
भाजपा ने रखी वाम मोर्चे की लाज

12
बिहार को मिला क़द्दावर नेता

राजनैतिक दलों को जनता की स्पष्ट चेतावनी

पुरानी कहावत है कि सफलता का श्रेय लूटने वाले अनेक मिल जाते हैं, लेकिन विफलता का माई-बाप कोई नहीं बनता. केंद्र में एक बार फिर से सरकार बनाने के लिए जनादेश पाने वाली कांग्रेस से लेकर भाजपा, वाम और तमाम क्षेत्रीय दलों को इसी परिप्रेक्ष्य में नई चुनौतियों से जूझना होगा.

कांग्रेस के लिए महंगाई और बेरोज़गारी से लड़ना सबसे बड़ी चुनौती

किसानों, दलितों व अल्पसंख्यकों की अनदेखी पड़ सकती है भारी

संतोष भारतीय

जनता ने अपना फ़ैसला सुना दिया, लेकिन यह केवल फ़ैसला नहीं है, चेतावनी भी है. यह चेतावनी राजनीति के आकाश पर साफ-साफ लिखी है और पढ़ी जा सकती है, बशर्ते कांग्रेस पार्टी और सरकार के पास इसे पढ़ने और समझने का वक़्त हो. इस समय कांग्रेस और मनमोहन सरकार के आसपास भांड़ों का मेला है जो ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर साबित करने में जुटे हैं कि उन्होंने तो कांग्रेस के जीतने की पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी, अब ये भांड़ राजनीति की मलाई में मुंह मारना चाहते हैं. इन भांड़ों ने पहले भाजपा को जिताया, बाद में दोनों को बराबर दिखा कर अस्थिरता की भविष्यवाणी की, अब ये रोज़ झूठ बोलकर कांग्रेस को गुमराह कर रहे हैं. ये भांड़ ही कांग्रेस की चरणवंदना और प्रशस्तिगान करते-करते उसे मदहोशी का ज़हर पिलाएंगे, और नशे में कर इतने ग़लत काम करा देंगे जिनसे जनता कांग्रेस के ख़िलाफ़ खड़ी हो जाएगी. चारण अपनी भंड़ैती की पराकाष्ठा पर चले गए हैं और कांग्रेस को भरोसा दिला रहे हैं कि उसने 206 नहीं बल्कि चार सौ चौदह सीटें जीत लीं हैं, जो इतिहास में केवल एक बार राजीव गांधी ने जीती थीं. हमें दुख है कि पत्रकारिता में ऐसे चारणों की भरमार हो गई है जो केवल एक सिद्धांत में भरोसा करते हैं कि उन्हें सरकारी पार्टी में रहना है, फिर सरकार चाहे कांग्रेस की बने या भाजपा की या किसी और की. यह समस्या कांग्रेस की है कि वह नशा पिलाने वालों को अपने आसपास इकट्ठा क्यों कर रही है, क्यों इनके जाल में फंस रही है और क्यों अपने शुभेच्छुओं से दूर हो रही है.

हम कांग्रेस को अप्रिय सत्य बताना चाहते हैं. उसे इन चारणों और भांड़ों से हटकर इस बात पर सोचना चाहिए कि पिछले सालों में हुए सभी विधानसभा चुनावों में हार के बावजूद क्यों जनता ने उसे लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में जिताया. इतना ही नहीं, जनता ने कमरतोड़ महंगाई पर भी ध्यान नहीं दिया. दालों की क़ीमत, गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा, मसाले, तेल यहां तक कि चीनी का भाव भी कांग्रेस के नेता चाहें तो पता कर लें. पांच हज़ार या उससे कम कमाने वाले देश में करोड़ों हैं, उनकी चाय में चीनी नहीं पड़ती, वे नमक डालकर चाय पी रहे हैं. बेरोज़गारी का हाल बताने की ज़रूरत नहीं, हर चौथे घर में कोई न कोई बेकारी का शिकार है. इसी मई में ही करोड़ों नौकरियां गईं, क्योंकि कंपनियों ने मंदी का बहाना बना छंटनी कर दी है. नौजवान बेराज़गारों को किसी क़ानून की मदद का भरोसा नहीं है.

इसके अलावा किसान अपनी खाद को लेकर परेशान है, जो उसे इस बार बहुत महंगी दर पर ब्लैक में मिलेगी. क़र्ज़ के जाल से निकलने का उसके पास कोई रास्ता नहीं है. क़र्ज़ माफी उसे तात्कालिक राहत दे गई, पर किसान को मालूम है कि क़र्ज़ के जाल में उसे दोबारा फंसना ही है, क्योंकि वित्त मंत्रालय की नीति ही उसे इस जाल में जकड़े रखने की है. मज़दूरों के काम के दिन घटते जा रहे हैं, हालांकि सरकार ने ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना चलाई है जिस का फायदा बड़े तबके को हुआ, लेकिन तीन सौ पैंसठ दिन में केवल सौ दिन काम की गारंटी और वह आमदनी भी महंगाई की भेंट चढ़ जाती है.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

ऐन मौके पर देश में बोफोर्स केस का खुलासा और सिख दंगे को लेकर कांग्रेस के सज्जन कुमार और जगदीश टाइटलर को निशाना बनाना तथा कांग्रेस का इसका मज़बूती से मुक़ाबला न करने ने अच्छा असर नहीं छोड़ा. टैक्स की भरमार और साढ़े चार साल तक अक्षम गृहमंत्री के सहारे देश चलाना, चुनाव जीतने का लक्षण नहीं था. परमाणु डील पर उपजे संदेह को देश के लोगों ने दिमाग़ में रखा, लेकिन उसे बाहर नहीं आने दिया.

ऐसी सूची की भरमार है, लेकिन कांग्रेस को सोचना चाहिए कि इस सबके बावजूद क्यों जनता ने उसमें भरोसा दिखाया और सबसे बड़ी पार्टी के रूप में संसद में स्थापित किया. जिस तरह सोनिया गांधी और राहुल गांधी ने संयत और शांत चेहरे से प्रचार किया, उसने देश के लोगों में विश्वास पैदा किया. राहुल गांधी ने, साथ में सोनिया गांधी ने विकास की बात की, ग़रीब

(शेष पृष्ठ 2 पर)

प्रधानमंत्री जी भविष्य को देखिए

जय हो गया... कांग्रेस विजयी हो गई... नई सरकार बन गई. जनता ने अगले पांच साल के लिए देश की कमान मनमोहन सिंह के हाथों में दे दी है. देखना यह है कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह इस मज़बूत जनादेश का अपनी दूसरी पारी में किस तरह इस्तेमाल करते हैं. मनमोहन सिंह एक अर्थशास्त्री हैं. पूरी दुनिया उन्हें भारत में निजीकरण के जनक के रूप में जानती है. यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है और यही उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी भी.

मनमोहन सिंह कि सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह सरकार और सरकारी संस्थाओं के प्रति लोगों का विश्वास किस तरह जीत पाएंगे. जिस तरह नेताओं और संस्थाओं पर से जनता का विश्वास उठा है, वह प्रजातंत्र के लिए एक ख़तरा है. इस विश्वास को वापस लाने की ज़िम्मेदारी इस सरकार की है. इस बार का जनादेश पिछली बार के जनादेश से अलग है, इसलिए जनता को उम्मीद है कि इस बार मनमोहन सिंह अलग ढंग से सरकार चलाएंगे. इस शक्तिशाली जनादेश का साफ मतलब है कि इस बार जनता सरकार से बेहतर कामों की उम्मीद कर रही है.

पिछले पांच सालों में मनमोहन सिंह की सरकार की योजनाओं का फ़ायदा समाज के सबसे ग़रीब वर्ग को नहीं हुआ. किसानों की हालत ऐसी हो गई है कि वे आत्महत्या कर रहे हैं. विकास के नाम पर देश के किसानों की ज़मीन छीनी जा रही है. किसानों को लगता है कि सरकार किसी प्रॉपर्टी डीलर की तरह काम कर रही है. किसानों को पानी नहीं मिल रहा है. विदेशी कंपनियों की वजह से खाद और बीज की क़ीमत आसमान छू रही है. किसानों का विकास सिर्फ़ ऋण माफ करने से नहीं होगा. किसानों के लिए एक समग्र योजना की ज़रूरत है. जनजातियों की हालत किसानों से भी बदतर है. जंगल कट रहे हैं और जनजातियों की ज़िंदगी और आशियानों को नष्ट किया जा रहा है. आज़ादी के बाद से अब तक देश के विकास के लिए सबसे ज़्यादा क़ुर्बानियां जनजातियों ने दी हैं. विकास के लिए उद्योगीकरण और खनन ज़रूरी है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इसके लिए जनजातियों की ज़िंदगी तबाह की जाए. अफसोस की बात यह है कि सरकार की पुनर्वास योजना का एक भी सफल उदाहरण हमारे सामने नहीं है. यह विडंबना ही है कि विकास की मलाई खाने वाले वे नहीं हैं जिन्होंने इसके लिए क़ुर्बानियां दी हैं. जनजातियों और किसानों की ख़ुशहाली ही ममनमोहन सिंह की असल चुनौती है.

कांग्रेस ने चुनाव के दौरान नरेगा (राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम) और क़र्ज़ माफी से काफी फ़ायदा उठाया. नरेगा गरीबों के लिए 100 दिनों के रोज़गार की स्कीम है. इसमें कम से कम 141 रुपये प्रतिदिन दिए जाते हैं. हक़ीक़त यह है कि इन दोनों योजनाओं को लागू करने में बहुत कमियां हैं. इन दोनों योजनाओं का फ़ायदा उन लोगों तक नहीं पहुंच रहा जिनके लिए इन्हें बनाया गया है. चुनाव के दौरान कांग्रेस ने इसकी असफलता का ठीकरा राज्य सरकारों पर फोड़ा. अब कांग्रेस के पास पूरा मौका है कि इसे ठीक से लागू करे. मनमोहन सिंह को ख़ुद इन योजनाओं को ठीक से लागू करने की ज़िम्मेदारी लेनी चाहिए.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

जनता ने मनमोहन सिंह को इसलिए फिर से सरकार चलाने का मौका दिया, क्योंकि वह ईमानदार हैं. अब वक़्त आ गया है कि वह जनता के इस विश्वास को और भी मज़बूती प्रदान करें. इस बार चुनाव में राहुल गांधी अपने पिता राजीव गांधी के उस बयान को दोहराते पाए गए कि जिस काम के लिए सरकार एक रुपये भेजती है उसमें से सिर्फ़ 15 पैसे ही ज़रूरतमंद लोगों तक पहुंचते हैं. 2014 के चुनाव में जनता इस दलील को नहीं सुनेगी. मनमोहन सिंह को हर वे कदम उठाने पड़ेंगे जिनसे सरकार का पूरा पैसा ज़रूरतमंदों तक पहुंच सके. इसके लिए मनमोहन सिंह को पूरे सरकारी तंत्र को साफ करना होगा. भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ मुहिम छेड़ने की ज़रूरत होगी. नौकरशाही में बदलाव लाने की ज़रूरत होगी और उन्हें उत्तरदायी बनाना होगा. नौकरशाहों के हर स्तर पर-कलेक्टर से लेकर केंद्रीय सरकार के उपसचिव तक-ज़िम्मेदारी सुनिश्चित करनी होगी. ज़िम्मेदारी का निर्धारण ही ऐसी चीज़ है जो सरकार को घोटालों को रोकने में और योजनाओं को लागू करने में मदद करती है. अगर मनमोहन सिंह एक जवाबदेह सरकार नहीं बना पाए तो डर है कि वह दूसरे दौर में असफल प्रधानमंत्री साबित न हो जाएं. सरकारी योजनाओं को लागू करने में असफल नौकरशाहों को दंडित करना ही होगा.

देश भर के मुसलमानों ने इस बार कांग्रेस का साथ दिया. मुस्लिम मतदाताओं की वजह से कांग्रेस उन राज्यों में भी जीत सकी, जहां पार्टी सिमट चुकी थी. देश में मुसलमानों की हालत बद से बदतर होती जा रही है. मुस्लिम समाज अशिक्षा, बेरोज़गारी से लेकर स्वास्थ्य तक की समस्याओं से जूझ रहा है. मुसलमान ख़ुद को राष्ट्र की मुख्यधारा से अगल-थलग महसूस कर रहे हैं. मुसलमानों की यह व्यथा है कि देश में अब ऐसा कोई नहीं बचा है जो उन्हें विकास और राजनीति की निर्णय प्रक्रिया में शामिल होने के लिए आमंत्रित करे. मुसलमानों के विकास के लिए कई कमेटियां बनीं, लेकिन उनकी सिफ़ारिशों को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया. इस जनादेश के बाद अब मनमोहन सिंह की यह अहम चुनौती है कि वह किस तरह देश के मुसलमानों की बेहतरी के लिए काम करते हैं.

मनमोहन सिंह सरकार को शहरों में काफी समर्थन मिला है. देश के दो सबसे बड़े शहरों दिल्ली और मुंबई में कांग्रेस को अभूतपूर्व सफलता मिली है. लेकिन देश के शहर रहने लायक नहीं रह गए हैं. यहां की जनता बस इतना चाहती है कि शहरों में सुरक्षा हो, साफ-सुधरी सड़कें, स्कूल, अस्पताल हों और साथ ही पीने का साफ पानी और बिजली की कमी न हो. शहरों में फैल रही झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों और अन्य ग़रीबों की ज़िंदगी अभिशाप बन चुकी है. शहर में रह रहे इन ग़रीबों के लिए सरकार को एक समग्र योजना बनाने की ज़रूरत है. ऐसा करने के लिए नौकरशाही को दुरुस्त करने की ज़रूरत पड़ेगी.

मनमोहन सिंह की एक और चुनौती यह है कि वह कांग्रेस पार्टी

(शेष पृष्ठ 2 पर)

दिल्ली के बाबू

दिलीप चेरियन

साउथ ब्लॉक

अनिश्चितता का समय

जो नई सरकार की कमान पाने की चाहत रखते हैं उन्हें इस बात की ख़ुशी होगी कि कैबिनेट सेक्रेटरी केएम चंद्रशेखर जून में, विदेश सचिव शिवशंकर मेनन और रक्षा सचिव विजय सिंह जुलाई में सेवानिवृत्त हो जाएंगे.

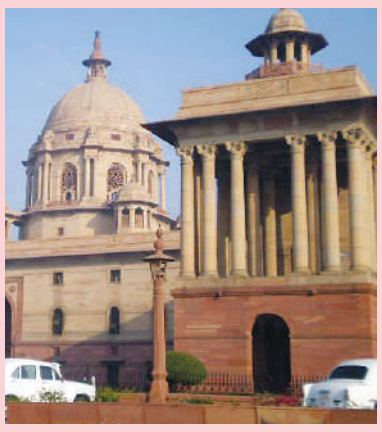

इस तरह यह तय है कि नई सरकार बनते ही एक बड़ा फेरबदल देखने को मिलेगा. तब तक अनिश्चितता का जो माहौल है, उसे समझा जा सकता है. लेकिन बदलाव तो हमेशा चलती रहने वाली प्रक्रिया होती है. सो, एयर इंडिया के प्रमुख के पद से रघु मेनन का जाना और उनकी जगह अरविंद जाधव की नियुक्ति इसी का संकेत है. आमतौर पर ऐसे महत्वपूर्ण बदलाव चुनाव के दौरान नहीं किए जाते, लेकिन साफ है कि सरकार को लगा कि इंतज़ार नहीं किया जा सकता था. तो क्या अब हम आगे और आश्चर्यजनक बदलावों की उम्मीद कर सकते हैं?

बहरहाल, यह अनिश्चितता कई बाबुओं को बुरी तरह परेशान कर रही है. एक बात तो तय है कि आने वाले हफ्तों में कई नए चेहरे देखने को मिलेंगे. फिलहाल तो यह इंतज़ार का वक़्त है.

समस्याओं का आरंभ

वेतन-पुनरीक्षण का विवाद पुरानी यूपीए सरकार के आख़िरी दिनों तक चला था. तब रक्षा कर्मियों और आईपीएस अधिकारियों ने आईएएस अधिकारियों को अधिक वेतन और जल्द तरक्की देने के सरकारी फैसले का विरोध किया था. अब बाबुओं का एक और धड़ा इस जंग में कूदने को तैयार है. छठे वेतन आयोग ने केंद्रीय लोक निर्माण विभाग (सीपीडब्ल्यूडी) के इंजीनियरों को दो साल के अंतराल के बाद दूसरी सेवाओं के बराबर वेतन देने की सिफ़ारिश की थी और सरकार ने पिछले साल अगस्त में ही इस सिफ़ारिश को मान लिया था. लेकिन सीपीडब्ल्यूडी के बाबू इस सिफ़ारिश को मानने के लिखित आदेश का इंतज़ार करते-करते थक गए हैं. यह आदेश कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग को जारी करना है. सूत्रों के अनुसार सेंट्रल इंजी. सर्विसेज (ग्रुप ए) असोसिएशन ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर इस मामले में दखल देने की अपील की है.

अजीब बात यह है कि इसके लिए उन्होंने जो पत्र भेजा है, उसमें लिखा है कि पीडब्ल्यूडी कर्मचारी तो कांग्रेस के विकास एजेंडे को लागू कर रहे हैं, लेकिन सरकार उन पर ध्यान नहीं दे रही. पत्र में कॉमनवेल्थ खेलों के लिए हो रहे कामों में पीडब्ल्यूडी के बाबुओं के महत्व का भी ज़िक्र है, अब यह ज़िक्र बस एक उदाहरण भर है या चेतावनी, कहना मुश्किल है.

उधर, आईपीएस अधिकारी भी फिर से मैदान में उतर आए हैं. इस बार उनका विरोध मुख्य सचिवों को ऊंची सैलरी मिलने को लेकर है. साफ है कि बाबुओं की दुनिया में अभी असंतोष ख़त्म नहीं हुआ है और नई सरकार को काफी मशक्कत करनी होगी.

खुल गई नियुक्तियों की राह

नई सरकार के बनने की राह आसान होते ही नियुक्तियों की प्रक्रिया में तेज़ी आ गई है. 1975 बैच के सात आईएएस अधिकारियों को भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में सचिव के पदों पर नियुक्त कर दिया गया है. इनमें भोपाल काडर के अनिल कुमार उपाध्याय, हिमाचल प्रदेश काडर की राजवंत संधू, महाराष्ट्र काडर के भवानी सिंह मीणा, मध्यप्रदेश काडर के जैमिनी कुमार शर्मा, पश्चिम बंगाल काडर के एन.के. रघुपति और पंजाब काडर के भूषण चंद्र गुप्ता व सुभाष चंद्र अग्रवाल हैं.

कौन कहां गया?

राजवंत संधू को पंचायती राज मंत्रालय में विशेष सचिव के पद पर नियुक्त किया गया है. जैमिनी कुमार शर्मा को कपड़ा मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव के पद पर नियुक्त किया गया है. भिवानी सिंह मीणा इस्पात मंत्रालय में विशेष सचिव का काम संभालेंगे. अनिल कुमार उपाध्याय कृषि मंत्रालय में कृषि शोध और शिक्षा विभाग में विशेष सचिव का कार्यभार संभालेंगे. पदमवीर सिंह लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी में संयुक्त सचिव का पदभार संभाल रहे थे, अब वह इसी मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव का काम देखेंगे. एन.के. रघुपति मिनीस्ट्री ऑफ पर्सनल, पब्लिक ग्रीवांसेस एंड पेंशन के स्टाफ सेलेक्शन बोर्ड में चेयरमैन के तौर पर कार्यरत थे, उन्हें तरक्की देकर विशेष सचिव बना दिया गया है.

नए नवेले बाबू

कुछ आईआरएस अधिकारियों को केंद्र में संयुक्त सचिव के पद पर नियुक्त करने के लिए कुछ समय से गहमा-गहमी चल रही थी. अब तक यह कहा जा रहा था कि 1980 बैच के शीर्ष 18 अफसरों को संयुक्त सचिव के पद पर नियुक्त किया जाएगा, पर अब यह सूचना है कि अठारह में से केवल पांच अफसरों को यह पद मिल रहा है. इनमें आईआरएसएस राकेश एरॉन, आईआरएएस एस.के.मलिक, एआरएसई एन.के. सिन्हा, आईआरएसईई वी.के.यादव, आईआरएसएमई अजय कुमार हैं.

अंजुम ए ज़ैदी

राजनैतिक दलों को जनता की स्पष्ट चेतावनी

पेज एक का शेष

भारत की बात की जिस पर लोगों ने भरोसा किया. इनके चेहरों पर नफरत नहीं थी, मुठ्ठियां नहीं बंधी थीं, और भाषा शालीन थी. कांग्रेस बुढ़िया पार्टी है, कांग्रेस गुड़िया पार्टी है-के जवाब को, जिसे प्रियंका ने दिया, लोगों ने ज़्यादा पसंद किया. कांग्रेस के पक्ष में हिंदू संत और मुस्लिम सूफ़ी खुलकर सामने आ गए और उन्होंने ऐसा माहौल बना दिया कि विश्व हिंदू परिषद और धर्म रक्षा मंच अपने दड़बे से बाहर ही नहीं निकल सके. कांग्रेस के पक्ष में लोगों की राय इसलिए सबसे ज़्यादा बनी कि राहुल गांधी और सोनिया गांधी ने साफ कहा कि उन्हें प्रधानमंत्री नहीं बनना है, जबकि बाकी दलों में कई-कई प्रधानमंत्री पद के दावेदार घूम रहे थे. भारत की जनता ने इन्हें इसलिए पसंद किया क्योंकि ऐसे लोग कम होते हैं जो सत्ता हाथ में रहते हुए सत्ता के शीर्ष पर नहीं जाते. और यही संकेत जनता का है कि कांग्रेस को चाटुकारों, चापलूसों और भांड़ों के बहकावे में आकर मदहोश नहीं हो जाना चाहिए. उसके सामने चुनौतियां हैं, प्राथमिकता पर उसे महंगाई और बेरोज़गारी को रखना होगा. सही प्रशासन, कमज़ोर वर्गों के लिए योजनाएं, किसान क़र्ज़ में न फंसे और खेती को लाभकारी बनाना भी उसे प्राथमिकता में शामिल करना होगा. दलित, अल्पसंख्यक अपने को सुरक्षित समझें, आर्थिक विकास का फायदा मिले तथा राजनीतिक प्रक्रिया में उन्हें हिस्सेदारी मिले, यह कांग्रेस का प्राथमिक कर्तव्य है. सबसे बड़ी ज़रूरत इस बात की है अब और आर्थिक घोटाले न हों. कालाधन देश में वापस लाने की कोशिश होती दिखाई दे, क्योंकि लोगों ने भाजपा की कालाधन वापस लाने की योजना पर भरोसा नहीं किया है.

कांग्रेस अगर इन संकेतों को पढ़ती और समझती है तो उसके लिए देश में हर जगह प्यार और समर्थन है, लेकिन नहीं समझती है तो उसे परेशानियों का सामना करने को तैयार रहना चाहिए. जनता ने उसे कुछ ऐसा समर्थन दिया है जो शेर की सवारी जैसा है. जनता का समर्थन उसे ख़तरे में न डाल दे, इसकी ज़िम्मेवारी कांग्रेस की है. इसलिए उसके लिए मदहोश होने की घड़ी अभी नहीं आई है. भाजपा को भारत की जनता ने साफ-साफ संदेश दिया है जिसे भाजपा समझना चाहती है या नहीं, अभी नहीं कह सकते. भाजपा ने इस चुनाव में आडवाणी जी को सामने रख हज़ारों करोड़ों खर्च किए. उनके प्रधानमंत्री बनने का इतना प्रचार किया कि भाजपा का हर कार्यकर्ता सचमुच समझने लगा कि अब आडवाणी जी प्रधानमंत्री बनेंगे ही नहीं. उसके पड़ोस में ही हलचल हो रही थी, लोग उकता रहे थे, ऊब रहे थे लेकिन भाजपा नेता इस ऊब को समझ ही नहीं रहे थे. क्या-क्या नहीं कहा- तीन लाख तक का इनकम टैक्स माफ करेंगे, किसानों का क़र्ज़ माफ करेंगे, देश में कालाधन वापस लाएंगे, आतंकवाद का ख़ात्मा करेंगे, अफ़जल गुरु को फांसी देंगे, राममंदिर बनाएंगे, धारा तीन सौ सत्तर ख़त्म करेंगे और कॉमन सिविल कोड लागू करेंगे. क्या भाजपा को यह नहीं मान लेना चाहिए कि उसके इन मुद्दों को भारत की जनता नकार रही है और चाहती है कि भाजपा नए मुद्दे तलाशे. वे मुद्दे जो भाजपा को समझ में नहीं आते, क्योंकि उसने चुनाव में विकास की, ग़रीबी की, महंगाई की, अशिक्षा और स्वास्थ्य के टूटे तंत्र की, कोई बात ही नहीं की. कांग्रेस नौजवानों को साथ लेने की और उन्हें देश का भविष्य बताने का अभियान चला रही थी, जबकि भाजपा अपने दल का नया वंशवाद गढ़ रही थी. अभी आडवाणी, फिर मोदी, फिर शिवराज सिंह चौहान, फिर अरुण जेटली, फिर...,फिर...भाजपा नेताओं की भाषा, उनकी मुद्राएं, उनके तेवर, उनके वायदे भारत के लोगों के मन में विश्वास नहीं पैदा कर सके. भाजपा का अभियान-राहुल गांधी के मुक़ाबले आडवाणी को रखना-मूर्खता की पराकाष्ठा थी. एक और बात, भाजपा देश को क्या विश्वास दिलाती, जब वह संघ को ही विश्वास नहीं दिला सकी. संघ का कार्यकर्ता चुनाव में भाजपा के पक्ष में निकला ही नहीं. रोज़ सुबह शाखाएं लगती थीं, लेकिन उन्हें मुहल्लों या गांवों में जाते तो किसी ने देखा नहीं.

भाजपा समझ सके तो समझे कि उसके प्रमुख मुद्दों को जनता नकार चुकी है, और उसे ऐसे चेहरे तलाशने में लगना होगा जो उसके आर्थिक एजेंडे को देश के सामने रख सकें और लोगों को विश्वास दिला सकें कि वे ग़रीबी, बेकारी और महंगाई के भी ख़िलाफ़ हैं.

भाजपा को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जहां उन्हें बुनियादी मुद्दे जो हिंदुस्तान की समस्याओं से जुड़े हों अपनाने पड़ेंगे. वहीं उन्हें यह भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि देश की बीस प्रतिशत आबादी को अपने दायरे से अलग रख कर वे कभी देश की संसद में बहुमत नहीं बना सकते. भारतीय जनता पार्टी का अब तक का इतिहास हिंदुस्तान के मुसलमानों के ख़िलाफ़ चलने का रहा है. उन्हें देश के मुसलमानों से संवाद स्थापित करना होगा और उनकी सस्याओं को हल करने की सार्थक योजना बनानी होगी. भाजपा को इस बात को भी समझ लेना चाहिए कि इस देश के हिंदू सांप्रदायिक नहीं हैं. और उसका भरोसा सर्वे भवंतु सुखिनः और सर्वे संतु निरामयाः में हैं. उसका भरोसा सबकेसुख और सबकी उन्नति में है. इस देश के हिंदुओं को यही सनातन धर्म ने सिखाया है. जिस बात को इस देश का बच्चा-बच्चा जानता है उसे भाजपा क्यों समझना नहीं चाहती यह समझ में नहीं आता है. भाजपा को सनातन धर्म की आस्थाओं का क्यों पता नहीं है और वह हिंदू धर्म के नाम पर क्यों सनातन धर्म का अपमान करने पर तुली हुई है, क्योंकि धर्म तो हिंदू नहीं. सनातन है. वामपंथी इसलिए नहीं हारे कि उनके मुद्दों में दम नहीं था, वे इसलिए हारे कि जिनका समर्थन उन्होंने चार सालों से ज़्यादा किया, अचानक उनसे अलग हट सरकार गिराने की कोशिश क्यों की. वामपंथियों की बात तो सरकार ने कभी नहीं मानी, तब क्यों वे नकली विरोध करते रहे. केरल की जनता सनकी मुख्यमंत्री से परेशान थी और बंगाल की जनता सरकार के किसान विरोधी रुख़ से. ममता बनर्जी वहां आम आदमी की आवाज़ बन गईं. बंगाल में हार का बड़ा कारण मुसलमानों का वामपंथियों को वोट न देकर ममता बनर्जी को वोट देना था. मुसलमान दो सालों से वाममोर्चे को स्पष्ट संकेत दे रहे थे, मीटिंगों में कह रहे थे, विमान बोस जैसे नेता बात समझते भी थे लेकिन बुद्धदेव भट्टाचार्य कुछ करना ही नहीं चाहते थे. उन्होंने जो वायदे मुसलमानों से किए, उन्हें अनदेखा कर दिया. अंत में, वामपंथी काडर जनता से दूर से दूर होता चला गया. बड़े प्रदर्शन या बड़ी सभाएं जनता के समर्थन की गारंटी नहीं होतीं, बस यही बात वामपंथी नहीं समझ पाए. मायावती, मुलायम सिंह, लालू यादव और रामविलास पासवान के लिए जनता के संकेत साफ हैं. इन्हें जनता ने भरपूर समर्थन दिया, भरपूर साथ भी दिया. इनसे अपेक्षा थी कि ये समाज का शक्ति संतुलन बदलेंगे लेकिन साथ ही उस वग की दशा भी सुधारेंगे जिस वर्ग से आते हैं. इतना ही नहीं, ये अपने से कमज़ोर वर्गों को आर्थिक विकास में शामिल करने के साथ उन्हें राजनीतिक हिस्सेदारी भी देंगे. सत्ता सभी के पास आई, मायावती के पास अभी भी है लेकिन किसी ने विकास को प्राथमिकता नहीं माना. इन सभी को मुसलमानों का भरपूर समर्थन मिला लेकिन सबसे ज़्यादा तिरस्कार भी उन्हें झेलना पड़ा. इस बार सभी ने अपना बदला लिया. यह अपेक्षा बेकार है कि ये लोग जनता के संकेत को समझेंगे, और अगर नहीं समझेंगे तो अभी जहां हैं उससे भी बदतर स्थिति में पहुंचेंगे. इन्हें समझना चाहिए कि अब इनके समर्थक वर्ग विकास की भाषा नहीं सुनना चाहते, अपने घर और गांव में विकास देखना चाहते हैं. सभी के समर्थक दूर भागे हैं, यह संयोग नहीं है, यह मोहभंग है. दक्षिण में जयललिता, राजशेखर रेड्डी और नवीन पटनायक. तीनों राज्यों में मुख्यमंत्री के कामों को जनता ने सराहा और अपना समर्थन दिया. जयललिता समझती रही हैं कि उन्हें दिल्ली जाकर या तो प्रधानमंत्री बनवाना है या प्रधानमंत्री बनना है, पर जनता ने ख़ामोश करुणानिधि के कामों को सराहा.

जिन संकेतों को राजनोता नहीं समझेंगे उसके लिए केवल दुख प्रगट कर सकते हैं, जैसे अभी प्रगट किए जा रहे हैं. बाहुबलियों और अपराधियों को भी जनता ने नकार दिया है. यह पहली बार हुआ है कि लोग डरे नहीं और उन्होंने ख़ामोशी से अपराध के ख़िलाफ़ मत दे अपेक्षाकृत साफ लोकसभा चुन दी.

सत्ता में कांग्रेस है, इसलिए उसके सामने यही चुनौती है कि वह कैसे सत्ता में बनी रहे और अगले चुनाव में कैसे पूर्ण बहुमत ले आए. यह तभी हो सकता है जबकि वह जनता के पक्ष में सरकार चलाए. दलितों, अल्पसंख्यकों, कमज़ोर वर्गों, ग़रीबों और किसानों के पक्ष में फ़ैसले ले. संपूर्ण विपक्ष के ख़िलाफ़ कांग्रेस का समर्थन कर जनता ने कांग्रेस पर बहुत भरोसा किया है. यह भरोसा टूटना नहीं चाहिए. भरोसा टूटने के बाद जनता का फ़ैसला बहुत निर्मम होता है, इसे आडवाणी जी और भाजपा से ज़्यादा कौन समझेगा.

editor.chauthiduniya@gmail.com

प्रधानमंत्री जी भविष्य को देखिए

पेज एक का शेष

के घोषणापत्र को अक्षरशः लागू करें. यह काम आसान नहीं होगा, क्योंकि सरकार बनते ही अर्थशास्त्री और उद्योगपतियों से दबाव होगा कि देश में फिर से निजीकरण और विनिवेश का दौर चले. पिछली बार जिस तरह नार्थ ब्लॉक और साउथ ब्लॉक में बिचौलियों और सत्ता के दलालों का वर्चस्व रहा, उसे भी मनमोहन सिंह को ख़त्म करना होगा. उन्हें अपनी पार्टी के दलालों से भी बचाना होगा. इसलिए कि लोगों को लगता है कि दलाल उनकी पार्टी में आसानी से घुस जाते हैं और राज्यसभा के जरिए सांसद बनकर सरकार को प्रभावित करते हैं.

यह जनादेश आम आदमी के लिए ख़ुशख़बरी है. मनमोहन सिंह को यह शानदार मौका मिला है कि वह मंदी के इस दौर में देश की आर्थिक स्थिति को सुधारें. मनमोहन सिंह इस काम को करने में सक्षम हैं और अगर वह इसमें सफल होते हैं तो उनका कद विश्व स्तर के नेता का हो जाएगा. समझने वाली बात यह है कि जनता ने कांग्रेस को इसलिए वोट नहीं दिया कि मनमोहन सिंह देश में फिर से निजीकरण और विनिवेश की नीतियों को अपनाएं. जनता को उम्मीद यह है कि इस बार वह सामाजिक विकास और सामाजिक न्याय पर ध्यान देंगे. रोज़गार के नए दरवाजे खोलेंगे और आम आदमी को महंगाई से राहत दिलाएंगे.

देश की आंतरिक सुरक्षा भी मनमोहन सिंह के लिए एक चुनौती है. भारत पिछले कुछ सालों से आतंकवादियों के निशाने पर रहा है. देश का कोई भी शहर सुरक्षित नहीं है. मुंबई में हुए आतंकवादी हमले ने सरकार की तैयारियों की पोल खोल दी. स्थानीय पुलिस और केंद्रीय सुरक्षा बलों में तालमेल का अभाव साफ दिखा. पुलिस वाले लाठी लेकर एके-47 का सामना करते नज़र आए. यह ठीक है कि जान पर खेल देश के बहादुर सिपाही आतंकवादियों का मुक़ाबला कर रहे हैं, लेकिन सवाल यह है कि ऐसा कब तक चलता रहेगा? सरकार को इससे निपटने के लिए बड़े क़दम उठाने होंगे. सैन्य बलों और पुलिस फोर्स को आधुनिक हथियार और संचार के अत्याधुनिक तकनीक मुहैया कराने की ज़रूरत है. यह भी सच है कि खुफिया तंत्र बेकार हो चुके हैं, इसलिए देश में खुफिया तंत्र पर नए ढंग से सोचने की ज़रूरत है. आतंकवादियों से निपटने के लिए थलसेना, जलसेना और वायुसेना का इस्तेमाल किस तरह हो, इस पर भी विचार करना होगा.

आतंकवाद से भी बड़ी चुनौती मनमोहन सिंह के सामने क़ानून-व्यवस्था लागू करने वाली एजेंसियों को चुस्त और दुरुस्त करने की है. कोई शहर ऐसा नहीं है जहां महिलाओं की गले की चेन न छिनी जा रही हो, पर्स ना छीने जा रहे हों. पैसा जमा कराने जाते हुए या पैसा निकालकर आते हुए लोग बैंकों के सामने दिनदहाड़े लुट रहे हैं. हर दूसरे दिन इस तरह की ख़बरें आती हैं कि किसी लड़की को गाड़ी में खींच कर बलात्कार कर बाहर फेंक दिया गया. क़ानून-व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति अत्यंत चिंताजनक है. इससे निपटने के लिए पुलिस सुधार आयोग की रिपोर्ट को अविलंब लागू करना बेहद ज़रूरी है.

देश के अलग-अलग राज्यों में हज़ारों गांव और सौ से ज़्यादा जिले नक्सलियों से प्रभावित हैं. वहां समानांतर सरकार चल रही है. चुनाव के दौरान पचास से अधिक नक्सली हमले हुए. चुनाव को रोकने की कोशिश की गई. मनमोहन सिंह ने नक्सलवाद को एक राष्ट्रीय सुरक्षा का मामला बताया है, लेकिन पिछले पांच सालों में कोई भी ठोस क़दम नहीं उठाए गए. अब इस जनादेश के बाद देखना है कि सरकार इस ख़तरे से किस तरह निपटती है.

मनमोहन सिंह कि चुनौती पड़ोसी देशों के साथ अच्छे रिश्ते बनाने की भी होगी. पूरा दक्षिण एशिया जल रहा है. पाकिस्तान अस्थिरता के सबसे ख़तरनाक दौर में है. वहां की सरकार तालिबान से अपनी ही ज़मीन पर लड़ रही है और साथ में ऐसी भी ख़बरें आ रही हैं कि वह विदेशी पैसे का इस्तेमाल परमाणु बम बनाने में कर रहा है. पाकिस्तान और भारत के बीच वार्ता पर विराम लगा हुआ है. पाकिस्तान में तालिबान का सफाया होने के बाद कश्मीर के दुर्गम इलाक़ों में घुसपैठ का ख़तरा बढ़ गया है. श्रीलंका में तमिलों को लेकर अभी अनिश्चितता है. नेपाल भी राजनीतिक संकट से गुज़र रहा है. बांग्लादेश में बांग्लादेश राइफल द्वारा हाल में हुए सैनिक विद्रोह की वजह से वहां की स्थिति भी चिंताजनक है. मनमोहन सिंह सरकार के सामने चुनौती यह भी है कि पड़ोसियों के साथ हमारे रिश्ते कैसे बेहतर बनें और किस तरह इन देशों की समस्याओं में भारत उनकी मदद कर सकता है.

इन सबसे पहले मनमोहन सिंह की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह कैबिनेट के अंदर प्रधानमंत्री की प्रमुखता को फिर से वापस लाएं. पिछली बार सरकार बनने के बाद कांग्रेस और सहयोगी दलों के मंत्री ख़ुद को सुपर प्रधानमंत्री की तरह समझने लगे थे और प्रधानमंत्री कार्यालय की अनदेखी होने लगी थी. लेकिन इस बार मनमोहन सिंह को चाहिए कि वह हर छह महीने में मंत्रालयों के कामों का जायज़ा लें और काम में ढील बरतने वाले मंत्रियों को बाहर का रास्ता दिखाएं और मंत्रालयों को एटीएम बनने से रोकें. मनमोहन सिंह को शुरू से ही संदेश देना पड़ेगा कि पिछली सरकार की तरह इस बार मंत्रालयों की अनुशासनहीनता और अनैतिकता को बर्दाश्त नहीं किया जाएगा. देश की जनता यही चाहती है कि सरकार के कामों में अड़ंगा लगाने वाले मंत्री और नेताओं को सत्ता में रहने का कोई हक़ नहीं है. अंत में, मनमोहन सिंह को जनता ने फिर से मौका इसलिए नहीं दिया है कि वह फिर से पुराने दिनों वाली कांग्रेस की संस्कृति को लागू करें. जनता को इसकी झलक तब मिली जब जीत की भनक लगते ही कुछ लोग राहुल गांधी को प्रधानमंत्री बनने के लिए चापलूसी के स्तर पर उतर आए. सोनिया गांधी ने इस तरह की मांगों को तुरंत ख़ारिज़ करके अच्छा काम किया. अगर सोनिया गांधी कांग्रेस में मौजूद चापलूस किस्म के नेताओं को दरकिनार कर दें और पार्टी में नए लोगों को मौका दें तो कांग्रेस उन सभी लोगों की आशाओं को साकार करेगी जिन्होंने इस बार कांग्रेस को वोट दिया है.

मनीष कुमार

manish.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 11, 31 मई 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

भाजपा को अतिबुद्धिमान सलाहकारों ने डुबोया

मनीष कुमार

चाल, चिंतन और चरित्र में राजनीति अद्‌भुत होती है. हालिया चुनावी नतीजों ने भी यह बात साफ कर दी है. भाजपा के लिए तो और अधिक. कितनी अजीब बात है कि पांच वर्षों तक लालकृष्ण आडवाणी जिस व्यक्ति के इशारे पर फ़ैसले लेते रहे, जिस सलाहकार की हर बात को पत्थर की लकीर मानते रहे, आज वही हार के लिए आडवाणी को ही ज़िम्मेदार बता रहा है. वह व्यक्ति हैं–सुधींद्र कुलकर्णी. आडवाणी के सलाहकार नंबर वन. उन्होंने चुनाव नतीजे आने के अगले ही दिन एक अंग्रेज़ी अख़बार में लिख दिया कि इस चुनाव में आडवाणी एक विजेता जैसा तेवर नहीं दिखा सके. आडवाणी ने अगर चुनाव के दौरान कुछ कठोर फैसले ले लिए होते तो शायद भारतीय जनता पार्टी की ऐसी स्थिति नहीं होती. सुधींद्र कुलकर्णी की बातों से तो यही लगता है कि वह समझते हैं कि उनकी सलाह तो सही थी, लेकिन आडवाणी ही उन पर अमल नहीं कर सके. क्या सुधींद्र की नज़र में आडवाणी कड़े फैसले लेने में अक्षम हैं? अब इसका जवाब तो भाजपा के लोग ही दे सकते हैं कि जो सलाहकार भाजपा के ही प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार आडवाणी पर सवाल खड़ा करे, उसकी पार्टी में उपयोगिता क्या है? 2009 के आम चुनाव में जनता ने मज़बूत नेता, मजबूर नेता और कमज़ोर नेता की बहस को ही ख़त्म कर दिया. लालकृष्ण आडवाणी न सिर्फ़ चुनाव हारे, बल्कि लौहपुरुष और मज़बूत नेता के ख़िताब से भी हाथ धो बैठे. अब भी भाजपा अगर उन्हें लौहपुरुष कहना जारी रखती है तो लोगों को हंसी ही आएगी. इसमें कोई शक़ नहीं कि आडवाणी भारतीय राजनीति के मैराथन धावक हैं. छह दशकों से भारतीय राजनीति की मुख्यधारा के वह एक अहम सिपाही रहे. लेकिन जीवन के आख़िरी पड़ाव में उन लोगों पर भरोसा कर लिया जो उनके पूरे किए–धरे को धो डालने की जुगत में थे. अपने जीवन की अंतिम लड़ाई में वह ऐसे सलाहकारों से घिर गए जो अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं और देश की जनता को समझने में अक्षम थे.

आडवाणी के सलाहकारों में वे लोग थे जिन्हें चुनावी राजनीति का अनुभव नहीं है. ये लोग टीवी पर बहस करने जाते हैं. एक से एक तर्क देते हैं, जिससे सामने वाला निरुत्तर हो जाता है, या कम से कम ऐसा दिखने तो लगता ही है. लेकिन उन्हें यह बात समझ में नहीं आई कि तर्क से बहस जीती जा सकती है, चुनाव जीतने के लिए तो वोट चाहिए होते हैं. आडवाणी के सलाहकारों में ऐसा कोई नहीं था जिसने चुनाव लड़ा हो, जो जनता के बीच से यानी ज़मीनी संघर्ष से पैदा हुआ नेता या विचारक हो. भाजपा के इन सलाहकारों और रणनीतिकारों में चुनाव लड़ने का अनुभव किसी के पास नहीं है. ये लोग एयरकंडीशन कमरे और टीवी स्टूडियो में अपनी चमक बिखेरते हैं. बात जब ज़मीनी राजनीति की हो तो ये धूमिल हो जाते हैं. ये वही लोग हैं जिन्होंने पिछली बार *इंडिया शाइनिंग* का नारा बुलंद किया था, जिसके कारण 2004 में पराजय का सामना करना पड़ा. भाजपा की आदत बेपरवाही की बन चुकी है या उसने अपनी ग़लतियों से नहीं सीखने का प्रण कर लिया है, वरना जिन कारणों से वह 2004 का चुनाव हार गई थी, वही ग़लती कैसे दोहरा सकती थी?

आडवाणी के प्रमुख सलाहकार सुधींद्र कुलकर्णी थे. वह आडवाणी के सबसे निकट माने जाते हैं. वह भाजपा के चुनावी वार रूम के मुखिया थे. सुधींद्र ने आईआईटी मुंबई से बी–टेक करने के बाद पत्रकारिता की ओर रुख़ किया. सुधींद्र एक मार्क्सवादी हैं. उनकी लेखनी भी सशक्त है. मार्क्स और लेनिन की विचारधारा उनके लेखन में झलकती है. लेकिन वह वामपंथी विचारधारा से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के बीच की दूरी को ख़त्म नहीं कर सके. शायद यह बात बहुत कम लोग ही जानते हैं कि सुधींद्र का वामपंथी होना ही आडवाणी से उनकी नज़दीकी की वजह है.

आडवाणी के सलाहकारों ने पिछले पांच सालों में जितने भी सलाह दिए, उसी का ख़ामियाजा आज भाजपा भुगत रही है. अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा के चुनाव अभियान की नक़ल करने के विचार के सूत्रधार भी सुधींद्र ही थे. इन सलाहकारों के सौजन्य से यहां भी भाजपा की फ़जीहत ही हुई. युवाओं को लुभाने के नाम पर इस वेबसाइट पर भाजपा के करोड़ों रुपए खर्च कर दिए गए. इस कवायद का नतीजा क्या निकला? इसके जरिए दस हज़ार युवा भी साथ नहीं आ सके. इन सलाहकारों को इतनी सी बात समझ में नहीं आई कि भारत असल में गांवों में रहता है, जहां इंटरनेट नहीं है और जिनके पास इंटरनेट हैं वे लोग यदा–कदा ही वोट देने जाते हैं.

चंदन मित्र

सुधींद्र के कहने पर ही आडवाणी ने अपनी जीवनी लिखी. उन्होंने आडवाणी को समझाया कि देश की जनता उन्हें एक कट्टर नेता मानती है. इस जीवनी के जरिए लोग उनके सही चरित्र को जान पाएंगे. लोग आडवाणी को उदारवादी समझने लगेंगे. सुधींद्र की यह सलाह भी मुसीबत साबित हुई. वह यह फ़र्क़ नहीं कर पाए कि राजनीति में नेता की पहचान उसके असली चरित्र को लेकर नहीं, बल्कि उसकी छवि से होती है. इस किताब में आडवाणी ने कई ऐसे मुद्दों पर ऐसी–ऐसी बातें लिख दीं जिनकी वजह से उनकी फ़जीहत हुई. कंधार हाईजैक के मामले पर जब आडवाणी ने लिख दिया कि आतंकवादियों को वापस भेजने के फ़ैसले के बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी, तो कांग्रेस ने उनके ही इस बयान से यह मुद्दा बना दिया कि आडवाणी कितने ग़ैर–ज़िम्मेदार गृह मंत्री थे.

दरअसल सुधींद्र की हर सलाह आडवाणी को प्रधानमंत्री की कुर्सी से दूर ले गई. वह सुधींद्र की वजह से ही जिन्ना प्रकरण में फंसे. आडवाणी के दिमाग़ में सुधींद्र ने ही यह बात डाली थी कि जिन्ना सेकुलर थे और नेहरू से महान थे. सुधींद्र की इस एक सलाह की वजह से आडवाणी को पूरे एक साल तक राजनीतिक वनवास लेना पड़ा. और तब से लोग आडवाणी को एक भ्रमित और दिशाहीन नेता मानने लगे. अगर उस वक़्त भी आडवाणी ने सुधींद्र का परित्याग कर दिया होता तो आज शर्मसार होने से बच जाते. इस मुद्दे के जरिए आडवाणी ने विरोधियों को हमला करने का हथियार दे दिया और अपने समर्थकों को शर्मसार किया. कार्यकर्ता ख़ुद को ठगा महसूस करने लगे. हैरानी की बात है कि भाजपा के नेता नाराज़ थे, संघ नाराज़ था, कार्यकर्ता नाराज़ थे, समर्थक नाराज़ थे और आडवाणी के ये महान सलाहकार टीवी चैनलों में आडवाणी के बयान को सही ठहराने के लिए कुतर्क पेश कर रहे थे. इसका नतीजा हुआ कि भाजपा के कार्यकर्ता आडवाणी की नेतृत्व क्षमता पर ही सवाल करने लगे.

इन सलाहकारों को एक छोटी–सी बात समझ में नहीं आई कि वेबसाइट निकालने से, किताब लिखने से, अमेरिका से लाए गए मार्केटिंग एजेंसी और ब्रांड बनाने वाली एजेंसी से आडवाणी जैसे नेता का इमेज मेकओवर नहीं हो सकता. साठ साल तक देश की राजनीति की मुख्यधारा में सक्रिय रहने वाले नेता की छवि को रातों–रात बदला नहीं जा सकता है. इन सलाहकारों को लग रहा था कि आडवाणी को एक उदारवादी नेता के रूप में पेश किए जाने से उन्हें फ़ायदा होगा. आडवाणी एक मास लीडर हैं. उन्हें देश भर में चाहने वाले लोग हैं. इन सलाहकारों ने उन्हीं गुणों–अवगुणों को ख़त्म करने की कोशिश की, जिसकी वजह से लोग उन्हें चाहते थे. नतीजा हुआ कि आडवाणी न अटल बन सके और न ही आडवाणी रह सके. वह अपने सलाहकारों के चंगुल में फंसे एक मजबूर नेता होकर रह गए. इन सलाहकारों का हर प्रयास विफल रहा. जनता जिस आडवाणी को जानती थी और इस चुनाव के दौरान जिस तरह से उन्हें पेश किया गया, उसमें काफी फ़र्क़ था. सलाहकार उदारवादी बता रहे थे, और टीवी पर मज़बूत नेता के नाम से प्रचार चल रहा था. लौह–पुरुष को उनके ही सलाहकारों ने आडवाणी ही नहीं रहने दिया. नतीजा हुआ कि चुनाव के दौरान आडवाणी की इमेज एक चतुर राजनीतिज्ञ की बन गई. जिसका सामना सत्ता त्याग करने वाली सोनिया और सीधे–सादे और ईमानदार मनमोहन सिंह से था. यही वजह है कि इस चुनाव में आडवाणी सबसे कमज़ोर नेता बन गए.

आडवाणी के सलाहकारों की सबसे ख़ास बात यह रही कि वह आडवाणी को बराक ओबामा बनाना चाहते थे. ये लोग अमेरिका के चुनाव प्रचार से इतने प्रभावित हुए कि उसकी नक़ल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी. एक मजेदार बात यह भी रही कि चुनाव प्रचार में आडवाणी के परिवार का भी इस्तेमाल किया गया. ठीक वैसे ही, जैसे अमेरिका में राष्ट्रपति के उम्मीदवार करते हैं. इन सलाहकारों ने यह समझाया कि परिवार के साथ दिखने से देश की जनता उन्हें एक पारिवारिक व्यक्ति समझेगी और उनकी कठोर छवि को जनता भूल जाएगी. इन सलाहकारों की समझ की बलिहारी है. वे भूल गए कि भारत आख़िरकार भारत ही रहेगा, अमेरिका नहीं बनेगा. यहां का हर आदमी परिवार के साथ ही रहता है. जो परिवार के साथ नहीं रहता है उसे लोग ग़लत मानते हैं और जो रहता है उसे किसी सर्टिफिकेट की ज़रूरत नहीं पड़ती. आडवाणी के साथ उनकी बेटी प्रतिभा को देख कर लोग कहने लगे कि आडवाणी अपनी बेटी को राजनीति में लाना चाह रहे हैं. जैसे कांग्रेस में राहुल गांधी नेता बन गए वैसे ही आडवाणी की बेटी भी भाजपा में नेता बनेगी. हालांकि यह बात सही नहीं थी, लेकिन जनता तो अपने हिसाब से ही सोचती है. यही आडवाणी के सलाहकार नहीं समझ सके.

आडवाणी की छवि बदलने के लिए उनकी बेटी प्रतिभा आडवाणी ने न्यूज़ चैनलों में इंटरव्यू भी दिया. हर बार एक ही बात कही कि आडवाणी नर्मदिल इंसान हैं और मीडिया ने उनकी छवि कट्टर और सख्त नेता की बना दी है. प्रतिभा की बातों से लगा कि वह ऐसा कह उन्हीं सलाहकारों के बताए वाक्यों कोदोहरा रही थीं. आडवाणी के पूरे प्रचार में एक समानता यह थी कि इन सलाहकारों ने उन्हें अटल जी की तरह छवि वाले नेता बनाने की कोशिश की लेकिन वे असफल रहे. बेटी उन्हें नर्मदिल इंसान बता रही थी लेकिन उसी इंटरव्यू के बाद या बीच के ब्रेक में आडवाणी का मज़बूत नेता का प्रचार चल रहा था. अब इन सलाहकारों को कौन समझाए कि जिस आडवाणी को देश की जनता जानती–पहचानती है और जैसा देखना चाहती है, उस छवि को बदलने की भूल ने ही आडवाणी के सारे गुणों को धूमिल कर दिया. आडवाणी ने वैसे सलाहकारों पर भरोसा किया, जिनकी आस्था न तो पार्टी की विचारधारा के प्रति थी और न ही संगठन के प्रति. इनमें से ज़्यादातर ऐसे लोग हैं जो एनडीए सरकार के दौरान अपनी व्यक्तिगत पसंद या मजबूरी की वजह से बीजेपी के नज़दीक आए और अपने तर्क, बुद्धि और ज्ञान की चमक दिखाकर आडवाणी के करीब आ गए. उनके सलाहकारों में सुधींद्र कुलकर्णी, चंदन मित्रा और बलबीर पुंज हैं. संघ और भाजपा में इनकी हैसियत विचारकों की है. इनके अलावा भाजपा महासचिव अरुण जेटली प्रमुख रणनीतिकार की भूमिका में रहे. साथ ही दीपक चोपड़ा, वेंकैया नायडू और अनंत कुमार आडवाणी के नज़दीकी सलाहकार थे.

चंदन मित्र एक अंग्रेज़ी अख़बार के संपादक हैं. आडवाणी के करीबी माने जाते हैं. भाजपा ने उन्हें राज्यसभा का सदस्य बनाया. सांसद बनने के बाद जब से उन्होंने टीवी पर दिखना और बोलना शुरू किया, तब से ख़ुद को एक तटस्थ विचारक की तरह पेश करते रहे. भाजपा के बारे में जब वह बोलते थे तो उनके विचार एक राजनीतिक विश्लेषक की तरह होते थे. उनको यह बताने में भी झिझक होती थी कि वह भाजपा के नुमाइंदे हैं. यह भाजपा में ही हो सकता है कि जिस व्यक्ति को पार्टी का समर्थक बताने में शर्मिंदगी महसूस होती है, वह पार्टी का सलाहकार बना हुआ है. पार्टी के अहम फैसले में वह शामिल है. चुनाव के दौरान की घटना है. इस चुनाव में चंदन मित्र एक चैनल पर बहस करने लगातार जाते रहे. अपनी छवि को धूमिल न करते हुए जितना हो सका उन्होंने भाजपा का बचाव भी किया. उनकी ग़ैरमौजूदगी में इस पैनल में बैठे एक विश्लेषक ने साफ–साफ कहा कि चंदन ने उनसे अनौपचारिक बातचीत में बताया है कि पार्टी की विचारधारा को लेकर वोट जुगाड़ने में काफी परेशानी हो रही है. मोदी और वरुण की वजह से लोग भाजपा से नाराज़ चल रहे हैं. उनका कहना ग़लत नहीं है. वह पत्रकार हैं. अच्छी बहस करते हैं. तर्क देने में उनका जोड़ नहीं है. दुविधा बस यह है कि आडवाणी और बीजेपी को क्या ऐसे सलाहकारों की वाकई ज़रूरत है, जो संगठन की आंतरिक बैठक में कुछ और कहते हैं और बाहर निकलकर कुछ और कहने लगते हैं. शायद आडवाणी की यह मजबूरी होगी कि उनके आसपास रणनीति और योजना बनाने वाला कोई नहीं था. इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी यह तय ही नहीं कर सकी कि उन्हें किस पर भरोसा करना है और किस पर नहीं. सुधींद्र की तरह चंदन मित्र भी मार्क्सवादी हैं. एनडीए के उत्थान के बाद ही उन्होंने भारतीय जनता पार्टी का दामन पकड़ा. सेंट स्टीफंस के छात्र रहे चंदन भाजपा के *इंडिया शाइनिंग* और इस बार के प्रचार के पुरोधा थे. भाजपा के लिए सबसे बड़ी परेशानी रही कि पेशे से पत्रकार रहे ये लोग ख़ुद को स्पिन डाक्टर समझते हैं. चंदन मित्र अब तक ऐसा कोई कमाल नहीं दिखा सके हैं जिसे देखकर यह कहा जा सकता हो कि उनमें राजनीतिक सलाहकार बनने के गुण हैं. फिर भी भाजपा ने उन्हें बीजू जनता दल के साथ गठबंधन को बचाने के लिए भुवनेश्वर भेज दिया. नतीजा वही निकला, जो निकलना तय था. गठबंधन टूट गया. उड़ीसा में भारतीय जनता पार्टी का सूपड़ा साफ हो गया. पत्रकारों से राजनीति करवाना आडवाणी को महंगा पड़ा. भाजपा की हार की एक बहुत बड़ी वजह ये सलाहकार हैं.

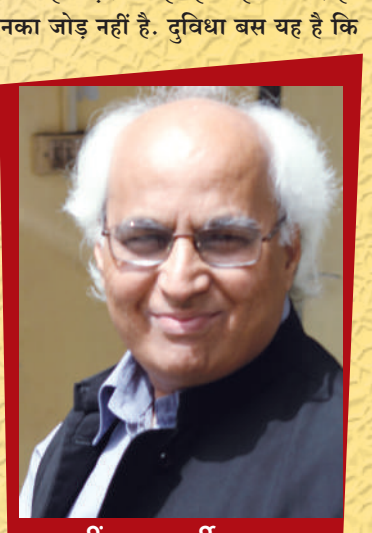

सुधींद्र कुलकर्णी

अंत में, इन सलाहकारों के बारे में कहने के लिए ज़्यादा कुछ नहीं है, बस हिंदी फिल्म के एक गाने की चंद लाइनें याद आती हैं,

माना तूफां के आगे, नहीं चलता ज़ोर किसी का,
मौजों का दोष नहीं है, ये दोष है और किसी का
मझधार में नैया डोले, तो माझी पार लगाए,
माझी जो नाव डुबोए, तो उसे कौन बचाए.

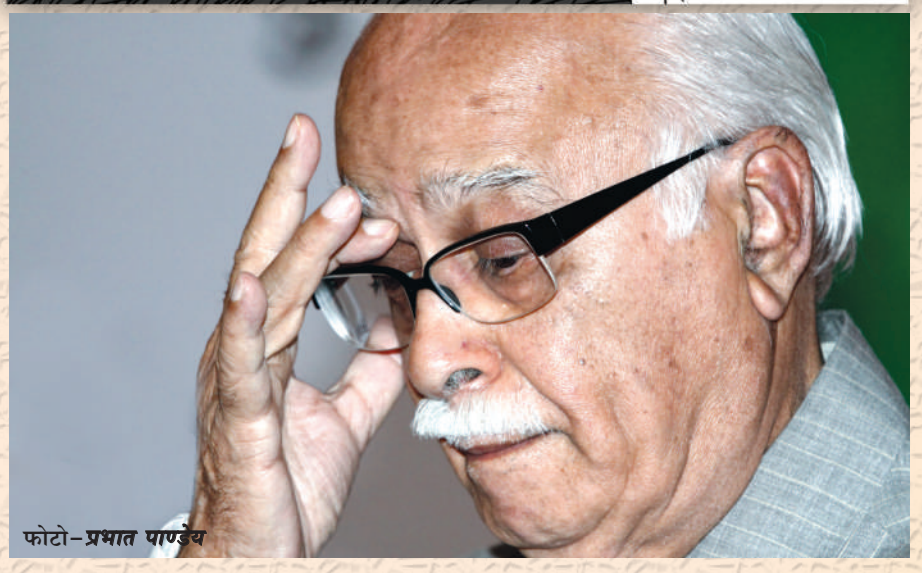

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

आडवाणी जी को क्या हो गया है

जीवन के इस मोड़ पर चुनाव हारने के बाद आडवाणी ने राजनीति से संन्यास लेने का जो फ़ैसला लिया वह बिल्कुल सही था. लेकिन पता नहीं क्यों उन्होंने अपने फ़ैसले को भी बदल लिया. भाजपा के लोगों के मुताबिक, ऐसा उन्होंने अपने सलाहकारों और पार्टी के दूसरे नेताओं के कहने पर किया. उनके सलाहकारों ने तो चुनाव के दौरान आडवाणी का मखौल उड़ाया ही अब राजनीति में बने रहने की सलाह देकर उन्हें और भी मुसीबत में डाल दिया है. चुनाव परिणाम आने के बाद आडवाणी दो दिनों तक बाहर नहीं आए. ज़ाहिर है, वह उदास होंगे. इस बात पर चिंतन कर रहे होंगे कि आख़िर चूक कहां हुई. आडवाणी ख़ुद एक मंझे हुए रणनीतिकार रहे हैं. इसमें कोई शक़ नहीं है कि भारतीय जनता पार्टी किन किन वजहों से हारी, यह उनसे बेहतर कोई नहीं समझ सकता है. वह अब तक जान चुके होंगे कि उनके सलाहकारों ने उन्हें अपने प्रयोग का एक मोहरा बना दिया. आडवाणी जीवन की सबसे बड़ी बाज़ी ग़लत सलाहों के कारण हार गए. वह भी उन सलाहकारों की वजह से, जिनमें जनता की नब्ज़ को पहचानने की क्षमता नहीं है. यह भारत है. यहां की जनता सोच समझकर सही फ़ैसले लेती है. जो त्याग करता है उसे जनता गले लगाती है. जो हड़पने की कोशिश करता है, तो जनता उससे वह चीज़ छीन लेती है. भाजपा के चुनाव प्रचार से जनता को लगा कि आडवाणी येन केन प्रकारेण प्रधानमंत्री की कुर्सी पर विराजमान होना चाहते हैं. आडवाणी का मुक़ाबला उन लोगों से था जिन्होंने प्रधानमंत्री बनने की इच्छा नहीं जताई. जिसने त्याग किया, उसे जनता का आशीर्वाद मिला. वैसे भी हिंदू धर्म में जो त्यागी होता है वही पुरस्कार का हक़दार होता है. हिंदू धर्म और भारतीय समाज का यह पहलू शायद आडवाणी और उनके सलाहकार नहीं समझ पाए. अब तो यह लगने लगा है कि इन सलाहकारों की वजह से आडवाणी ने ख़ुद फ़ैसला लेना भी छोड़ दिया है, वर्ना राजनीति में फिर से वापस आने की कोई वजह नज़र नहीं आती. वह अब भी नहीं समझ सके कि उनके सलाहकार उनका इस्तेमाल कर रहे हैं. अगर उन्होंने संन्यास ले लिया होता, तो भाजपा का नया नेता इन सलाहकारों की सलाह लेने के बजाय उन्हें बाहर का रास्ता दिखा सकता था.

manish .chauthiduniya@gmail.com

कांग्रेस ने पाया काम का इनाम

सभी फोटो–**प्रभात पाण्डेय**

रूबी अरुण

कांग्रेस और यूपीए को लगभग स्पष्ट जनादेश देकर देश की जनता ने अपनी इच्छा और संकल्प दोनों व्यक्त कर दिए हैं. वामपंथियों को उनकी औक़ात बताते हुए और दक्षिणपंथियों को नकारते हुए दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश ने कांग्रेस के नेतृत्व में एक बार फिर सरकार बनाने का जनादेश दे दिया. इस जनादेश में युवा भारत की आकांक्षा है, तो ग़रीबों–किसानों की उम्मीदें भी. कमज़ोर तबके का सुरक्षा का सपना है, तो बेरोज़गारों और मंदी की मार झेल रहे नौजवानों की रोटी का सपना भी. अब कांग्रेस के सामने पहले से कहीं ज़्यादा चुनौतियां हैं. आवाम ने कांग्रेस को महज़ अपना वोट ही नहीं दिया है बल्कि अपना भविष्य, अपनी ज़िंदगी के बेशक़ीमती पांच साल भी दे दिए हैं. यूं तो संप्रग आम आवाम के हित में किए गए अपने कई कामों का ब्यौरा देता है, पर उन सभी में से तीन अहम क़दमों को सबसे ज़्यादा सफलता मिली है. वे हैं राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना, किसान ऋण माफी योजना और सूचना का अधिकार. किसान ऋण माफी योजना से देश के चार करोड़ किसानों को सीधे तौर पर फायदा पहुंचा है. देश के जो किसान क़र्ज़, ग़रीबी और भुखमरी से तंग आकर आत्महत्या कर रहे थे, उन्हें सरकार के इस क़दम ने नई ज़िंदगी दे दी. किसानों के आत्महत्या का प्रतिशत अचानक बेहद कम हो गया. क़र्ज़ माफी से देश के किसानों ने नई ज़िंदगी बसर करनी शुरू की. छोटे और सीमांत किसानों के 60 हज़ार करोड़ रुपये का क़र्ज़ माफ कर दिया गया. इसके लिए सरकार ने ठोस क़दम भी त्वरित उठाए. 2007–08 में समेकित निधि से 10 हज़ार करोड़ रुपए सार्वजनिक खाते में हस्तांतरित कर के क़र्ज़ माफी की प्रक्रिया शुरू कर दी गई. इस कोष का विस्तार वर्ष 2011–12 तक किया जाएगा. इस योजना से लाभान्वित चार करोड़ किसानों का सीधा समर्थन कांग्रेस को मिला.

इसी तरह ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना से देश के डेढ़ करोड़ बेरोज़गार युवकों को रोज़ी–रोटी मिली. उनकी ख़ुशहाली बढ़ी. जो नौजवान रोज़गार की तलाश में अपना घर–बार छोड़ कर दूर–दराज़ के शहरों में दर–दर भटकते थे, उन्हें अपने गांवों में ही रोज़गार मिल गया. वे अपने घर में ही रह कर दो जून की रोटी सम्मान के साथ खाने लगे. ज़ाहिर है, इसका सीधा फायदा कांग्रेस को मिला. सरकार की कोशिश रही कि रोज़गार गारंटी योजना के जरिए आर्थिक विकास का लाभ आम आदमी को मिले. इस मुद्दे पर भी सरकार की ख़ूब छीछालेदर हुई कि यह योजना समान रूप से देश भर में लागू करने में कोताही की जा रही है, जिससे इसका लाभ सभी को नहीं मिल पा रहा. लेकिन बाद में हुए सर्वे से यह बात साबित हो गई कि यह योजना सरकार की सफलतम योजनाओं में से एक है. हालांकि यह ज़रूर है कि आर्थिक विकास का पूरा लाभ आम आदमी को नहीं मिला. देश में जिस तेज़ी से अरबपतियों की संख्या बढ़ी है उतनी ही तेज़ी से ग़रीबों की संख्या भी बढ़ी. मंदी से निपटने के लिए सरकारी नौकरियों की संख्या बढ़ाने में भी सरकार विफल रही. खाद्य पदार्थ, फर्टिलाइज़र और पेट्रोल पर सब्सिडी तथा दूसरी सरकारी सेवाओं का लाभ ग़रीबों तक कम ही पहुंचा. उसी तरह सूचना के अधिकार का क़ानून बनाना यूपीए सरकार की बड़ी उपलब्धियों में से एक रहा. हालांकि विपक्षियों ने सरकार की इस बात के लिए काफी आलोचना की थी कि सरकार इस क़ानून को लेकर संज़ीदा नहीं है. पर देश की आम जनता को इसका महत्व समझ में आया और उसने इस क़ानून का भरपूर लाभ भी उठाया. एक आम आदमी जो किसी अधिकारी से बात करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था, वह इस क़ानून के तहत अपने प्रदेश के मुख्यमंत्री तक से भी सवाल पूछने लगा. सरकार के इस क़दम से जनता में यह संदेश गया कि यूपीए सरकार देश में पारदर्शी शासन व्यवस्था क़ायम करना चाहती है. ज़ाहिर है, इस संदेश का लाभ भी कांग्रेस को प्रत्यक्ष तौर पर मिला. चुनाव प्रचार के दौरान कांग्रेस महासचिव राहुल गांधी, अध्यक्ष सोनिया गांधी, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह आदि ने सरकार द्वारा आम आदमी के हित में उठाए गए इन क़दमों का ख़ूब प्रचार किया. चूंकि जनता को इन योजनाओं का लाभ मिल चुका था, लिहाज़ा यह बात कांग्रेस के पक्ष में वोटों में तब्दिल हो गई. इसके अलावा एक और बेहद महत्वपूर्ण पहलू है परमाणु करार. कांग्रेस को लगता है कि देश के लोगों को इस करार का लाभ समझ में आ चुका है, जिसका उसे ज़बरदस्त फायदा मिला है. हालांकि प्रत्यक्ष तौर पर जो मुगालता कांग्रेस को इस करार के फायदों को लेकर है वैसा हक़ीक़त में है नहीं. सच तो यह है कि आम लोगों की समझ में अभी तक नहीं आया है कि आख़िरकार यह बला है क्या चीज़. पर इतना ज़रूर है कि इस करार के मसले पर ठनी रार में जो फतह मनमोहन सिंह ने हासिल की, उसने एक बड़ा सकारात्मक संदेश जनमानस में छोड़ा. और यक़ीनन उसकी भूमिका भी कांग्रेस की इस शानदार जीत में रही.

मुसलमान और दलित वोटों का कांग्रेस की तरफ वापस मुड़ना, राहुल गांधी के करिश्माई व्यक्तित्व के कारण युवा वोटरों में कांग्रेस की तरफ रुझान पैदा होना आदि तो कांग्रेस की जीत के कारणों में से हैं ही. देश में 171 सीटों पर मुस्लिम मतदाताओं की संख्या लगभग 20 फीसदी है. इनमें से 85 सीटों पर यूपीए उम्मीदवारों ने विजय हासिल की. साफ है कि कांग्रेस को मुसलमानों का जबरदस्त साथ मिला.

कांग्रेस के लिए उसके गठबंधन के सहयोगियों का टूट कर जाना फायदेमंद ही रहा. युवा वोटरों को रिझाने की वैसे तो सभी दलों ने कोशिश की, पर देश के युवाओं ने यूपीए को ही प्राथमिकता दी. क्योंकि युवाओं को लगता है कि यूपीए के पास राहुल, सचिन पायलट, प्रिया दत्त, ज्योतिरादित्य सिंधिया, जितिन प्रसाद और उमर अब्दुल्ला जैसे युवा नेताओं की कतार है जो देश के पटल पर युवाओं की बात पूरी मज़बूती से रख सकते हैं, उनकी समस्याएं दूर कर सकते हैं. देश की जनता भी चूंकि टूट–फूट से आजिज़ आ चुकी थी, इसलिए वह किसी एक दल को पांच साल के लिए सत्ता सौंपना चाहती थी. और इसके लिए उसके सामने कांग्रेस से अच्छा विकल्प नहीं था. जिस तरह की समस्याओं से इस वक़्त दुनिया घिरी हुई है उसमें जनता को लगा कि मनमोहन सिंह की आर्थिक नीतियां ही खेवनहार बन सकती हैं.

बहरहाल, ये सब तो वे कारण रहे जो कांग्रेस की जीत के कारक रहे. अब ज़रा एक नज़र नई सरकार की चुनौतियों पर. मंदी के इस भयावह दौर में भी युवाओं ने यूपीए सरकार की कोशिशों पर ज़्यादा भरोसा किया. यही वजह है कि युवाओं ने कांग्रेस को एक मौका और देना ज़्यादा बेहतर समझा.

नई सरकार के सामने सबसे बड़ी समस्या गिरती विकास दर और बढ़ते राजकोषीय घाटे के दो पाटों में फंसी देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना है. आकाश छूती महंगाई से लोगों को निजात दिलाना होगा. और ऐसी नीतियां बनानी होंगी ताकि देश को दुनिया की आर्थिक महाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित किया जा सके. यूपीए के शासनकाल में महंगाई दर ने पिछले तेरह वर्षों का रिकार्ड तोड़ा. महंगाई दर 12.63 फीसदी की ऊंचाई पर पहुंची. विपक्ष ने इस पर ख़ूब शोर मचाया, पर जनता ने इसे खुली अर्थव्यवस्था की स्वाभाविक परिणति के रूप में देखा. हज़ारों नौजवानों की नौकरियां आर्थिक मंदी के कारण चली गईं. सरकार ने राहत पैकेज की घोषणा का अपनी सक्रियता दिखाने की कोशिश भी की, पर हैरानी यह कि वैसा असर ग्रामीण इलाकों में दिखा ही नहीं.

इसके साथ ही आतंकवाद की समस्या से भी जमकर लड़ना होगा. नई सरकार को आतंकवाद से निपटने के लिए ऐसी कारगर रणनीति बनानी होगी, ताकि 26 नवंबर जैसी घटना दोबारा नहीं हो सके. खुफिया तंत्र को मज़बूत बनाना भी बहुत बड़ी चुनौती है. राष्ट्रीय जांच एजेंसी को सक्षम बनाना होगा. ग़रीबी से लड़ना भी एक बड़ी समस्या है. हालांकि भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुकी है. इसका कुल जीडीपी 1.089 ट्रिलियन डालर है. रिजर्व बैंक के अनुसार, पिछले पांच साल के दौरान देश की विकास दर सात फीसदी रहने का अनुमान है. बावजूद इसके, निर्धनता पर विश्व बैंक की ताज़ा रिपोर्ट बताती है कि ग़रीबी उन्मूलन की दिशा में देश को अभी बहुत कुछ करना बाक़ी है. इस रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2015 में भी देश की एक चौथाई आबादी सवा डालर रोज़ाना से भी कम आय पर जीवन यापन करेगी. नई सरकार को इस दिशा में बहुत प्रयास करने पड़ेंगे.

नक्सलवाद भी देश की एक बड़ी समस्या है. सरकार की तमाम कोशिशों के बावजूद देश में अब भी सामाजिक और आर्थिक शोषण बरकरार है. नक्सलवाद की समस्या इसी शोषण का नतीजा है. इसे सभी सरकारें क़ानून और व्यवस्था की ही समस्या मानती आई हैं. सरकार पर यह महती ज़िम्मेदारी है कि वह नक्सल क्षेत्रों के लोगों के सामाजिक व आर्थिक उत्थान को केंद्र में रखकर उन्हें मुख्यधारा में लाए. इसके अलावा देश के ढांचागत विकास पर भी सरकार को ध्यान केंद्रित करना होगा. किसी भी देश का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि देश में आधारभूत ढांचे की क्या स्थिति है. अपने पड़ोसी देश चीन से ही तुलना करें तो हम पाएंगे कि आधारभूत ढांचे के विकास में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है. प्रधानमंत्री सड़क योजना और भारत निर्माण जैसी योजनाओं को और आगे ले जाना होगा. विदेश नीति भी एक बहुत बड़ी चुनौती है. हमारे तीन पड़ोसी देश नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका लगातार अस्थिरता के दौर से गुज़र रहे हैं. इन देशों को लेकर भारत की अभी तक कोई स्पष्ट विदेश नीति सामने नहीं आई है. श्रीलंका और नेपाल में जिस तरह चीन का दख़ल बढ़ता जा रहा है, उसके मद्देनज़र कांग्रेस की सरकार को एक स्पष्ट और मज़बूत नीति बनानी होगी. चीन और अमेरिका की नीतियों पर सतर्क निगाह रखनी होगी. नहीं तो इन देशों की नीतियां भारत के सामरिक हितों पर विपरीत प्रभाव डाल सकती हैं. अपनी जीत का जश्न मना रही कांग्रेस और उसके मित्र दलों के सामने सुरक्षा और सामरिक क्षेत्रों की समस्याएं भी सिर उठाए खड़ी हैं. संप्रग सरकार को अपने कार्यकाल के शुरू से ही इनसे जूझना होगा. श्रीलंका और पाकिस्तान की मानवीय त्रासदी और नेपाल का राजनीतिक घटनाक्रम सरकार की पेशानी पर बल ला सकता है. बहरहाल, इसमें कोई दो राय नहीं कि यूपीए को नई पीढ़ी का समर्थन और विश्वास हासिल हुआ है, और तभी कांग्रेस को 204 सीटों पर जीत हासिल हुई. इस बार की चुनावी प्रक्रिया में लगभग 4 करोड़ 30 लाख मतदाता ऐसे शामिल हुए जिन्हें पहली बार यह अधिकार हासिल हुआ था. कुल मतदाताओं का 24 फीसदी हिस्सा 18 से 35 वर्ष की उम्र के युवाओं का था. यह संख्या तकरीबन 18 करोड़ होती है. इस तबके ने चुनाव परिणाम पर गहरा असर डाला. जनता ने लोक लुभावन नारे, सांप्रदायिक उन्माद, क्षेत्र और जातिवाद की संकीर्ण राजनीति को साफ तौर पर नकार दिया. विकास, रोज़गार, स्थायित्व, देश की सुरक्षा और आर्थिक मंदी से निपटने जैसे मुद्दों को ज़्यादा तरजीह दी. कांग्रेस का मानना है कि युवाओं ने परमाणु करार के कारण उसकी तरफ अपना जबरदस्त रुझान दिखाया. इसके अलावा कांग्रेस यह भी मानती है कि उसने जन कल्याण की अनेक योजनाओं से जनता का विश्वास जीता है. आंतरिक सुरक्षा के सवाल को विश्व मंच पर बेहद संजीदगी से उठा कर कूटनीतिक सफलता हासिल की तो तीन लाख करोड़ रुपए का राहत पैकेज देकर बैंकों तथा औद्योगिक क्षेत्रों को मंदी के दौर से डूबने से बचा कर अपने सुशासन का परिचय दिया.

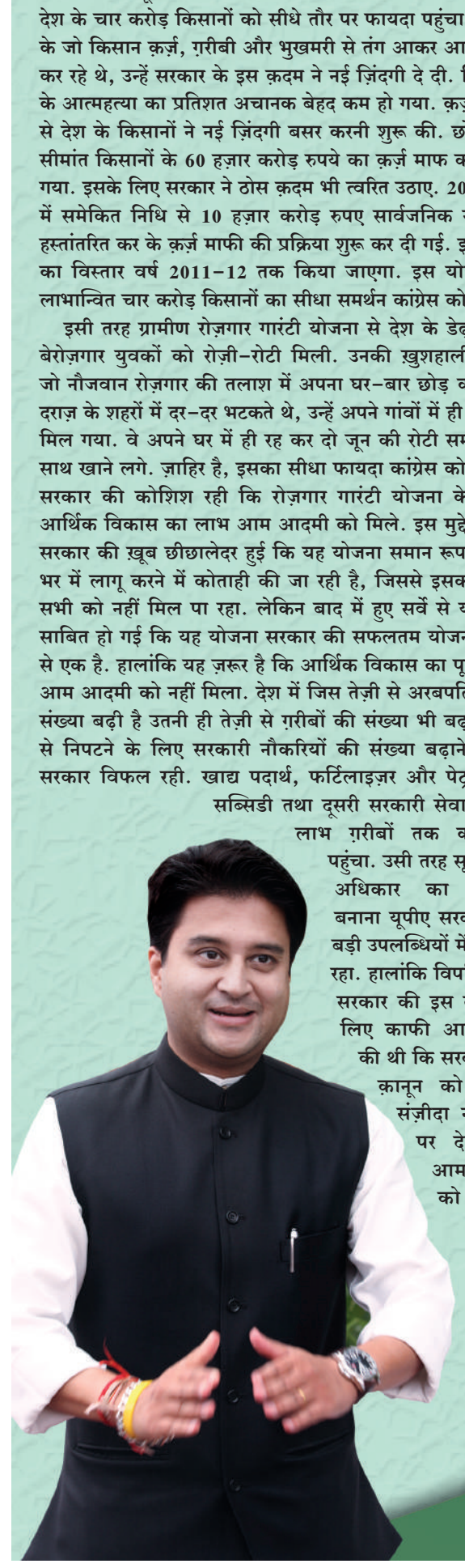

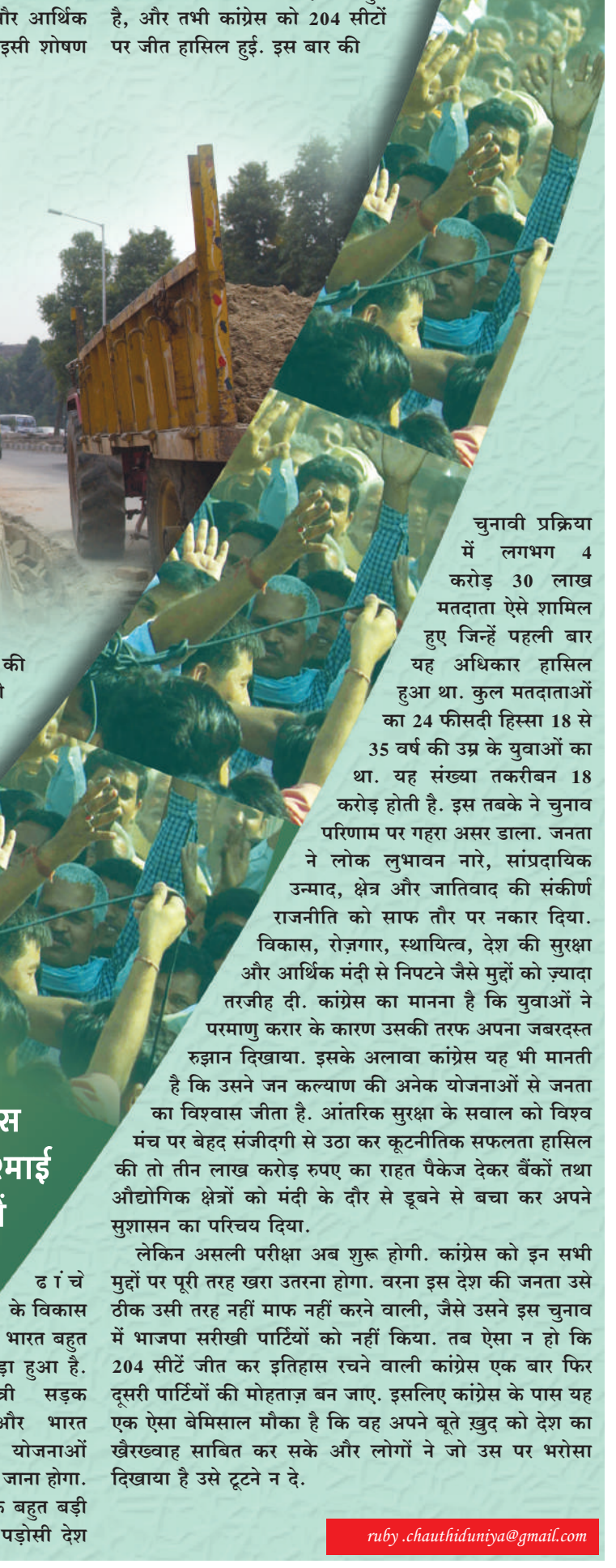

मुसलमान और दलित वोटों का कांग्रेस की तरफ वापस मुड़ना, राहुल गांधी के करिश्माई व्यक्तित्व के कारण युवा वोटरों में कांग्रेस की तरफ रुझान पैदा होना आदि तो कांग्रेस की जीत के कारणों में से हैं ही. देश में 171 सीटों पर मुस्लिम मतदाताओं की संख्या लगभग 20 फीसदी है. इनमें से 85 सीटों पर यूपीए उम्मीदवारों ने विजय हासिल की.

लेकिन असली परीक्षा अब शुरू होगी. कांग्रेस को इन सभी मुद्दों पर पूरी तरह खरा उतरना होगा. वरना इस देश की जनता उसे ठीक उसी तरह नहीं माफ नहीं करने वाली, जैसे उसने इस चुनाव में भाजपा सरीखी पार्टियों को नहीं किया. तब ऐसा न हो कि 204 सीटें जीत कर इतिहास रचने वाली कांग्रेस एक बार फिर दूसरी पार्टियों की मोहताज़ बन जाए. इसलिए कांग्रेस के पास यह एक ऐसा बेमिसाल मौका है कि वह अपने बूते ख़ुद को देश का खैरख्वाह साबित कर सके और लोगों ने जो उस पर भरोसा दिखाया है उसे टूटने न दे.

ruby .chauthiduniya@gmail.com

नाराज़ जनता का शिकार हुआ वाममोर्चा

राहुल मिश्र

बंगाल और केरल की जनता ने कथनी और करनी में अंतर रखने वाली पार्टियों को इस चुनाव में सज़ा दी. इन राज्यों में वाममोर्चे की ऐसी हार हुई कि अब उनके नेता चेहरा छुपाए घूम रहे हैं. बंगाल की हार इतनी शर्मनाक है कि मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने तो इस्तीफ़ा देकर अपनी साख बचाने की कोशिश की. चुनाव में हार के बाद बाममोर्चा दुविधा में फंसी है. यह दुविधा विचारधारा से लेकर, संगठन और सहयोगियों तक पर है. बंगाल और केरल की जनता ने न सिर्फ़ वामपंथ के क़िले को ढहा दिया, बल्कि इस मोर्चे को यह संकेत भी दिया कि कथनी और करनी में फ़र्क़ रखकर जनता को मूर्ख नहीं बनाया जा सकता है.

15वीं लोकसभा के लिए हुए मतदान में वामदलों को महज 28 सीटें हासिल हुईं, जो पिछले तीस वर्षों में उनका न्यूनतम आंकड़ा है. इससे पहले 2004 में वामदलों के पास लोकसभा की 60 सीटें थीं और उसके नेता दिल्ली की सत्ता के केंद्र में बैठ नीतिगत फ़ैसलों को सीधे तौर पर प्रभावित कर रहे थे. इन पांच सालों में राष्ट्रीय स्तर पर वामदलों के राजनीतिक आचरण पर जनता ने जनादेश दिया और आज वामदल हतप्रभ हैं.

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

जाने कहां गए वो दिन...

वामदलों की हार के पीछे सबसे बड़ा मुद्दा किसानों का बढ़ता आक्रोश रहा. पिछले 32 सालों से पश्चिम बंगाल में वाम दलों का वर्चस्व रहा और इस वर्चस्व के पीछे की शक्ति राज्य के किसान थे. लेकिन सिंगुर और नंदीग्राम की घटनाओं ने साबित कर दिया कि वामपंथी सरकार उद्योगीकरण के नाम पर किसानों की अति उपजाऊ ज़मीन उद्योगपतियों के हवाले करने में जुटी है. जनता का रोष सड़क पर आ गया. किसान आंदोलन कर रहे थे. सरकार गोलियां चला रही थी.

माहौल ऐसा बन गया कि ख़ुद को ग़रीबों, किसानों और मज़दूरों की मसीहा बताने वाली सरकार बेनक़ाब हो गई. यहां से भी अगर बुद्धदेव लौट आते तब भी इस हार से बच जाते. उन्होंने बयान देना शुरू कर दिया कि आंदोलन कर रहे किसान असल में नक्सली हैं और इलाक़े के गुंडे हैं. पूरा देश देख रहा था कि कैसे पुलिस की गोलियों से लोगों की मौत हो रही है और सरकार उसे झूठा ठहराने के प्रयास में जुटी थी. हालत यह हो गई कि वामपंथ के समर्थक भी दिग्भ्रमित हो गए. कोलकाता में लेखक, नाट्यकर्मी, कलाकारों, बुद्धिजीवियों और विचारकों को विरोध प्रदर्शन करना पड़ा. अफसोस की बात यह कि जिस कंपनी के लिए इतना कुछ हुआ उसी कंपनी ने मुख्यमंत्री की बातों को मानने से इंकार कर दिया और टाटा की नैनो कार बनाने वाली फैक्टरी गुजरात चली गई.

वाममोर्चे की सरकार से किसानों की नाराज़गी का फ़ायदा ममता बनर्जी ने उठाया. उन्होंने टाटा संयंत्र के ख़िलाफ़ प्रदेशव्यापी आंदोलन खड़ा कर दिया. आंदोलन में महारत हासिल किए वामपंथी इस आंदोलन को भांपने में चूक गए. ममता और उनकी तृणमूल कांग्रेस ने एक बार फिर एनडीए का दामन छोड़ कांग्रेस से सांठगांठ कर ली. ममता बनर्जी ने यह कई बार साफ किया कि वह उद्योगीकरण के ख़िलाफ़ नहीं हैं, लेकिन वह किसी भी क़ीमत पर किसानों की उपजाऊ ज़मीन उद्योगपतियों के हवाले नहीं होने देंगी. इस आंदोलन में ममता की पहली जीत उस दिन हो गई जब वह टाटा कंपनी के साथ आमने–सामन बैठ कर बातचीत से बीच का रास्ता निकालने लगीं. टाटा के सामने ममता ने ऐसी शर्तें रखी कि कंपनी ने बंगाल छोड़ कहीं और संयंत्र लगाने का फ़ैसला कर लिया. वहीं ममता ने सफाई से इस बात को कभी नहीं नकारा कि वह प्रदेश में नैनो संयंत्र के ख़िलाफ़ थीं, बल्कि उनकी पेशकश थी कि संयंत्र को प्रदेश के किसी और हिस्से में ग़ैर उपजाऊ ज़मीन पर लगा लिया जाए.

ममता के इस रुख़ से जहां वह किसानों की मसीहा बन गईं, वहीं प्रदेश का पढ़ा–लिखा तबका भी ममता को ध्यान से सुनने पर मजबूर हो गया. उसे ममता के तर्क में भी दम लगा और यह विश्वास भी जगा कि पश्चिम बंगाल के समग्र विकास का नक्शा वामदलों से बेहतर ममता खींच सकती हैं. किसानों के लिए यह फ़ैसला आसान था. एक तरफ उनकी ज़मीन छीनने वाले वामदल थे और दूसरी तरफ उनके हक़ की लड़ाई लड़ने वाली ममता बनर्जी. ऐसे में वोट किसे देना था, यह किसी अनपढ़ किसान को भी पता था. प्रदेश की वामपंथी सरकार ने किसानों के लिए राज्य के उद्योगीकरण को हमेशा हाशिए पर रखा. इससे किसान वर्ग वामपंथियों की ताक़त बना रहा और उसके उलट आज़ादी के बाद से लेकर खड़े हुए तमाम संयंत्र बदहाली में चले गए. उद्योगपतियों ने धीरे–धीरे बंगाल को छोड़ दिया. 14वीं लोकसभा के दौरान जिस तरह से उदारीकरण की नीतियों को अंजाम देने की कोशिश की गई, उससे किसानों का तबका धीरे–धीरे वामपंथी विचारधारा से कटने लगा. वाम सरकार ने उद्योगपतियों को न्योता देना शुरू किया और उन्हें संयंत्र लगाने के लिए किसानों की उपजाऊ ज़मीन बेचनी भी शुरू कर दी. इसके साथ ही, जिस तरह से प्रदेश सरकार ने किसानों से ज़मीन अधिग्रहण करके उद्योगपतियों के हवाले करना शुरू किया, उससे किसानों को यक़ीन होने लगा कि वामपंथी सरकार की आर्थिक नीति उन्हें हाशिए पर ले जाएगी. सिंगुर और नंदीग्राम प्रदेश की जनता के लिए चुनौती बन गया.

वहीं एक करोड़ से कुछ अधिक की जनसंख्या वाले कोलकाता की तरफ ग़ौर करें तो हाल के दिनों में शहर में लगे पोस्टरों में जिस तरह हथौड़े और हसिया के साथ युवा पीढ़ी के लिए रोज़गार के वादे और प्रदेश में नए उद्योग लगाने के सपने परोसे गए, उससे शहरी युवाओं की उम्मीद भी जगने लगी. इन सपनों से उन्हें भी पश्चिम बंगाल में बदलाव की बयार दिखने लगी. पश्चिम बंगाल में ज़्यादातर उद्योग चाहे जूट, कपड़ा या भारी मशीनरी के हों, सभी आज़ादी के पहले उस वक़्त लगे थे जब कोलकाता ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी थी.

राज्य में उद्योगीकरण 1970 के दशक तक चलता रहा. 1977 में जब वाममोर्चे की सरकार बनी, तब उसने किसानों को केंद्र में रखने के वादों पर अमल करने के लिए ज़मीन किसानों में बांटी और जिसका वास्तविक फ़ायदा भी किसानों को मिला. वैसे तो, इस वादे को पूरा करने में प्रदेश के उद्योगीकरण पर लगाम लग गई. कंपनियों में लेबर यूनियनों का वर्चस्व हो गया. हड़ताल और तालाबंदी रोज़ की कहानी बन गई. इस यूनियनबाजी और हड़ताल के चलते 1985 तक लगभग पैंतीस हज़ार कंपनियों और कारखानों पर ताला लग गया. नए उपक्रमों ने आने में रुचि नहीं दिखाई और खेती धीरे–धीरे परिवार चलाने के लिए कम पड़ने लगी. पश्चिम बंगाल से ग़रीब मज़दूर दूसरे राज्यों में काम की तलाश में जाने लगे.

ऐसे में प्रदेश में नई इकाइयों के आने की ख़बर से मज़दूरों में एक ख़ुशी की लहर थी, लेकिन एक–एक कर सभी बंगाल को नकार गए. सरकारी मशीनरी पर दीमक की तरह लगे कामरेड प्रदेश की जनता के लिए सिरदर्द बन चुके हैं और इस चुनाव में ऐसा कुछ अलग नतीजा दिखा भी नहीं. क्षेत्रीय चुनावों में वोट डालने से लेकर राशन की दुकान तक इन कामरेडों की गुंडागर्दी दिखाई देती थी. पिछले 30 वर्षों में वामपंथी दलों के इस वर्चस्व को किसी पार्टी ने नहीं ललकारा. चुनाव दर चुनाव होते रहे, और यह गुंडागर्दी कायम रही. पहली बार तृणमूल कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने इस गुंडागर्दी का खुलकर सामना किया, जिससे पहली बार इन कामरेड गुंडों को बैकफुट पर जाना पड़ा. पहली बार प्रदेश की जनता को अहसास हुआ कि वामपंथी गुंडागर्दी से लड़ा जा सकता है. शहरी इलाक़ों में वाम का यह क़िला लगभग ध्वस्त दिखा.

2004 में वाममोर्चा ने यूपीए गठबंधन को एक न्यूनतम कार्यक्रम और धर्मनिरपेक्ष ताक़तों को सत्ता में बैठाने के लिए समर्थन किया वहीं, 2009 के आम चुनावों में उससे मुस्लिम मतदाताओं ने भी मुंह मोड़ लिया. सच्चर कमेटी की रिपोर्ट ने यह ज़ाहिर कर दिया कि प्रदेश में मुस्लिम समुदाय सरकारी नौकरियों में उनकी जनसंख्या के मुताबिक काफी कम हैं. पिछले 32 सालों से एक ही पार्टी में वोट डालने का यह सिला, उनको अपने फ़ैसले पर सोचने के लिए मजबूर करने लगा. इसके बाद नंदीग्राम में ज़मीन अधिग्रहित करने से हिंसा भड़क गई. ग़ौरतलब है कि नंदीग्राम में मुस्लिम जनसंख्या बहुसंख्यक है, और उन्हीं की खेतिहर ज़मीन पर ख़तरा मंडरा रहा था. ममता के आंदोलन ने उनके सामने एक विकल्प दे दिया.

इसके बाद एक और जिस मामले ने मुस्लिम मतदाताओं को वाममोर्चे के विकल्प पर मुहर लगाने को मजबूर कर दिया वह था रिज़वानुर की हत्या और बुद्धदेव सरकार द्वारा की गई लीपापोती. यहीं तृणमूल कांग्रेस का कांग्रेस से गठबंधन एक शक्तिशाली विकल्प बन गया और मुस्लिम मतदाताओं ने भी वाममोर्चे को नकार दिया.

इन सब से कई कारण वाममोर्चे की संभावित हार के लिए तैयार हो चुके थे. वामदलों ने शुरू से ही जात–पात और धर्म की राजनीति के ख़िलाफ़ कड़े तेवर अपना रखा है. भ्रष्टाचार के मुद्दे पर भी वामपंथी नेता प्रमुखता से बोलते हैं. लेकिन 2009 के लोकसभा चुनावों के लिए जिस तरह गठबंधन की राजनीति ज़रूरी थी, क्या वामदलों की भी कोई मजबूरी थी कि वह इन नीतियों को दरकिनार कर जनता के दरवाजे वोट मांगने जाए? क्या मायावती और जयललिता से गठबंधन किसी राजनीतिक दूरदर्शिता के चलते किया गया?

देश की जनता, ख़ास तौर पर बंगाल की जनता भली भांति जानती थी कि इस देश को बेहतर ढंग से चलाने के लिए किस तरह के नेतृत्व की ज़रूरत है. यह बात वामदल इस बार भूल गए. इससे उन्होंने आनन–फानन में चुनाव पूर्व गठबंधन कर लिए. उड़ीसा में भाजपा और बीजू जनता दल के रिश्ते खराब होते ही वामपंथियों ने किस योजना के तहत उनका दामन थाम लिया, यह आज भी रहस्य है. तमिलनाडु में 2004 के गठबंधन के साथी को छोड़ कर क्यों जयललिता से गठजोड़ किया गया, इसका जवाब शायद देश के तीन चौथाई वामपंथी भी नहीं दे सकते. वहीं राजनीतिक पटल पर मायावती के उदय के बाद से ही बहुजन समाज के राजनीतिक आचरण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वाले वामपंथी किस रणनीति और दूरदर्शिता के चलते साथ हो गए, वे आज भी सोच रहे होंगे.

अगर नहीं, तो 2009 के नतीजों ने वामदलों को यह तो साफ कर ही दिया कि उनको नीतियां जनता के समग्र हितों के लिए बनाने की ज़रूरत है. यानी अगर वे जल्द ही चेते नहीं तो मतदाता उन्हें देश की राजनीति से ही दरकिनार करने में सक्षम है.

rahul.chauthiduniya@gmail.com

भाजपा ने रखी वाम मोर्चे की लाज

बिमल राय

नैनो एक छोटी कार है. इसमें न जगह है न बहुत ज़्यादा लोग बैठ सकते हैं और न ही वह अधिक वजन ढो सकती है. बंगाल में 33 साल से सत्ता की मलाई खाकर मोटे हो गए वामपंथियों को भला इतनी सरल बात कौन समझाता? संगठन के ज़ोर और नैनो की विदाई का शोकगीत पढ़कर बंगाल में अपना गढ़ बचाने की आस लगाने वाले कामरेडों को ज़ोर का झटका लगा है. वाम दलों को फूटी आंख भी नहीं सुहाने वाली भाजपा ने उत्तर बंगाल में सरकार को सीधे तौर पर चुनौती देने वाले गोरखा जन मुक्ति मोरचा से हाथ मिलाकर दार्जिलिंग की प्रतिष्ठित सीट तो जीत ही ली, साथ ही ममता को भी नुकसान करा दिया है. उसने विपक्षी वोटों का बांट कर कम से कम छह सीटें वाममोर्चा की झोली में डाल दी है.

इस लोकसभा चुनाव में पूरे बंगाल में वाम मोर्चा ने ममता को विकास विरोधी बताने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी. नैनो के गुजरात जाने से माकपा को यह उम्मीद थी कि शहरी इलाकों में उसे बढ़त अवश्य मिलेगी, पर वैसा नहीं हुआ. नंदीग्राम में पेट्रो–रसायन कारखाने के लिए ज़मीन अधिग्रहण नहीं करने का ऐलान कर व लोगों से माफी मांगकर माकपा ने सोचा था कि गलती सुधार ली गई. माकपा ने सोचा कि फोकस नैनो की विदाई पर रहे तो बेरोज़गारी का दंश झेल रहा युवा वर्ग ममता को अपना दुश्मन नंबर एक समझ बैठेगा, पर यहीं वे मार खा गए. ममता यह प्रभाव पैदा करने में कामयाब हुईं कि ज़्यादा समय से सत्ता में बैठे वामपंथियों को एक झटका देना ज़रूरी है. फिर भी डर था विपक्षी वोटों के विभाजित होने का, क्योंकि भाजपा सभी सीटों पर लड़ रही थी. वोटों के रणनीतिक ध्रुवीकरण के लिए मशहूर इस राज्य में भाजपा का तीसरा खेमा भले ही 41 सीटों में से किसी भी सीट पर दूसरे स्थान पर नहीं रहा, पर पहली बार इसके आठ प्रत्याशी 50 हज़ार से दो लाख तक वोटों का जुगाड़ करने में कामयाब हुए.

सिंगुर व नंदीग्राम से चली लहर के बूते तृणमूल व कांग्रेस के गठबंधन ने 42 में से 25 सीटें जीत ली हैं और वामदलों को केवल 15 सीटों से संतोष करना पड़ा है. इसमें माकपा की महज नौ, सीपीआई की दो, फारवर्ड ब्लाक की दो और आरएसपी की दो सीटें शामिल हैं.

अपने घर पर जीत का निशान दिखातीं ममता बनर्जी

भाजपा को केवल एक सीट मिली है. यह ग़ौर करने लायक है कि कम से कम छह सीटें वाममोर्चा को एक तरह से भाजपा के सौजन्य से हासिल होती लग रही हैं, क्योंकि यहां विपक्षी वोटों के बंटने का उसे लाभ हुआ है. परिणामों से संकेत मिलता है कि बंगाल में अगर भाजपा फैक्टर नहीं होता तो तृणमूल गठबंधन की झोली में 31 सीटें तक आ सकती थीं. ममता के गठबंधन से अलग होने पर भाजपा ने सभी 42 सीटों पर अपने प्रत्याशी खड़े किए थे. मिसाल के तौर पर वामदुर्ग कहे जाने वाले बर्दवान पूर्व सीट पर माकपा प्रत्याशी को 59419 वोटों के अंतर से जीत हासिल हुई, जबकि यहां के भाजपा प्रत्याशी ने 71632 वोट हासिल करने में कामयाबी पाई. मिदनापुर, जलपाईगुड़ी, अलीपुरद्वार, बालुरघाट और कूचबिहार सीटों पर भी यही हुआ. जलपाईगुड़ी में भाजपा को मिले 94000 वोटों ने कांग्रेस के सुखविलास वर्मा को हरा दिया. यहां का माकपा प्रत्याशी 90 हजार से भी कम वोटों के अंतर से जीता. अलीपुरद्वार में आरएसपी प्रत्याशी मनोहर तिर्की की जीत का अंतर अगर 112822 रहा तो भाजपा प्रत्याशी ने अकेले 199883 वोट हासिल किए, जबकि तृणमूल के पवन लाकड़ा को 2 लाख 72 हज़ार वोट मिले. यही हाल बालुरघाट सीट का रहा, जहां आरएसपी प्रत्याशी की जीत सिर्फ 5105 वोटों से हुई और यहां भाजपा को 60 हज़ार वोट मिले. कूचबिहार सीट पर भाजपा ने 64917 वोट पाए. इधर, फारवर्ड ब्लाक प्रत्याशी की जीत 33632 वोटों के अंतर से हुई. मिदनापुर के आदिवासीबहुल इलाके में अगर भाजपा को 52000 वोट नहीं मिले होते तो सीपीआई के प्रबोध पांडा चुनाव हार गए होते. कुछ अन्य सीटों पर भाजपा प्रत्याशियों ने भारी संख्या में वोट हासिल किए, लेकिन यह बात अलग है कि वे किसी को जितवाने या हरवाने में कामयाब नहीं हुए. उदाहरण के तौर पर कृष्णनगर में भाजपा प्रत्याशी सत्यब्रत मुखर्जी ने 175283 वोट हासिल किए और पूर्व मंत्री तपन सिकदर को दमदम सीट पर 55660 वोट मिले. वे पहले इस सीट पर दो बार जीत चुके थे. माकपा के एक सूत्र ने माना कि भाजपा की वजह से ही हमारी पांच–छह सीटें बचाई जा सकीं. इस तरह, राजस्थान से यूपी होते हुए चली बदलाव की हवा ने बंगाल में भारी तबाही मचाई है. कम से कम 194 विधानसभा सीटों पर कांग्रेस तृणमूल गंठबंधन और 10 सीटों पर भाजपा को साफ बढ़त दिख रही है. यानी 2011 के विधानसभा चुनावों में वाममोर्चा के लिए ख़तरे की घंटी बज गई है और यही रुख़ रहा तो 294 सदस्यीय विधानसभा में विपक्ष को दो तिहाई बहुमत तक मिल सकता है.

अपनी हार का मतलब समझिए लालू जी

सुरेंद्र किशोर

अति पिछड़ों के लिए आरक्षण, क़ानून-व्यवस्था में भारी सुधार और विकास योजनाओं की धमाकेदार शुरुआत ने बिहार में राजग को बड़ी चुनावी जीत दिला दी. इसके अलावा नीतीश कुमार का महादलित कार्ड और पसमांदा मुस्लिम के लिए उनकी सरकार की कल्याण योजनाओं की भी इस चुनाव में भूमिका रही.

पिछले पंद्रह साल के लालू-राबड़ी शासन काल में आम तौर से इससे उलट काम होते रहे थे. इस ग़रीब, पिछड़े और अभागे प्रदेश के मतदाताओं ने दोनों निज़ामों के बीच का अंतर साफ-साफ देख लिया और पक्षपातपूर्ण सामाजिक न्याय तथा एकतरफा धर्मनिरपेक्षता के नारे के कथित मसीहा लालू प्रसाद और रामविलास पासवान के गठबंधन को निर्णायक ढंग से इस बार पराजित कर दिया. संकेत बताते हैं कि लालू प्रसाद और रामविलास पासवान को अब एक बार फिर राजनीतिक तौर पर उठ खड़ा होने में काफी समय लग सकता है, क्योंकि उन्हें तो इसके लिए अपनी पूरी राजनीतिक संस्कृति ही बदलनी पड़ेगी जो उनके लिए आसान काम नहीं होगा. चुनाव नतीजे आने के बाद लालू प्रसाद और रामविलास पासवान की ओर से जो त्वरित प्रतिक्रियाएं आई हैं, उनसे तो नहीं लगता कि वे अपनी पुरानी राजनीतिक संस्कृति को बदलेंगे. शायद उसे बदलने की क्षमता ही वे खो चुके हैं. उधर कांग्रेस बिहार में एक सक्षम प्रतिपक्ष बनने की क्षमता पहले ही खो चुकी है. इस तरह यदि नीतीश सरकार का निकट भविष्य में किसी दमदार व प्रामाणिक प्रतिपक्ष से सामना नहीं हुआ तो नीतीश कुमार के देर-सवेर एकाधिकारवादी बन जाने का ख़तरा भी सामने है.

यदि यह कहा जाए कि लालू प्रसाद ख़ुद अपनी राजनीतिक क़ब्र खोद कर ख़ुद ही उसमें लेट गए हैं तो इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी. लालू प्रसाद 2000 से ही राजनीतिक रूप से कमज़ोर होने शुरू हो गए थे. 1996 में चारा घोटाले के अभियुक्त बनने और बारी-बारी से कई बार जेल जाने के बाद उनका जनसमर्थन घटना शुरू हो चुका था, पर कांग्रेस ने वर्षों तक उन्हें सहारा देकर थामे रखा. इस बार कांग्रेस भी काम नहीं आई या यूं कहें कि वह कांग्रेस के काम नहीं आए. नतीजतन सामाजिक न्याय का यह मतवाला मसीहा अब लोकसभा की चार सीटों तक सिमट गया. अब यहां से उठकर फिर बिहार की राजनीति में दबदबा बना लेना लालू प्रसाद के लिए आसान नहीं होगा, क्योंकि इस बार उनका पाला नीतीश कुमार से पड़ा है. नीतीश कुमार दूर की कौड़ी खेलने वाले नेता साबित हो रहे हैं. 1990 के मंडल आंदोलन से मिली अपार राजनीतिक तथा प्रशासनिक ताक़त का बाद के पंद्रह वर्षों में यदि लालू प्रसाद ने सदुपयोग किया होता तो आज उनकी जो हालत हुई है, वह नहीं होती. किसी शासन के पंद्रह साल कम नहीं होते. नीतीश कुमार ने तो मात्र सवा तीन साल में ही बिहार में ऐसा फ़र्क़ ला दिया है कि लालू प्रसाद जैसे महाबली इस चुनाव में बुरी तरह पस्त हो गए. यही काम लालू प्रसाद अपने कार्यकाल में बेहतर ढंग से कर सकते थे. उन्हें 1991 के लोकसभा चुनाव में बिहार में आज के राजग की तरह ही बड़ा जनादेश मिला था. नीतीश कुमार को मिले जनादेश में तो भाजपा की भी हिस्सेदारी है, पर तब तो लालू प्रसाद ने अकेले सफलता पाई थी. मंडल आंदोलन के कारण पिछड़ों से मिली अपार ताक़त के बल पर लालू प्रसाद ने 1991 में चुनाव जीता था.

लालू प्रसाद को 1991 के लोक सभा चुनाव में पिछड़ों की लगभग सभी जातियों का समर्थन मिला था. 1990 में रथयात्रा के दौरान एल.के. आडवाणी की समस्तीपुर में गिरफ्तारी के कारण अल्पसंख्यकों का भी समर्थन लालू प्रसाद को हासिल था. वैसे भी भागलपुर दंगे के बाद 1989 से ही अल्पसंख्यक कांग्रेस से बिदके हुए थे, पर समय बीतने के साथ लालू प्रसाद ने ख़ुद को यादव-मुस्लिम के बीच ही समेट लिया. भ्रष्टाचार पर काबू पाने में उनकी रुचि नहीं थी और राजनीति का अपराधीकरण लालू के लिए कोई गंदा शब्द नहीं रहा. इन दो तत्वों ने आर्थिक रूप से पिछड़े प्रदेश बिहार का बहुत नुकसान किया है. बाद में इसका नुकसान ख़ुद लालू प्रसाद को भी भुगतना पड़ा.

एक ग़रीब प्रदेश की सत्ता पाने के बावजूद वह कहते रहे कि विकास का राजनीति से कोई आपसी संबंध नहीं है. विकास से वोट नहीं मिलते. हालांकि व्यक्तिगत बातचीत में वह कहते रहे कि अभी विकास कर देने पर इसका लाभ ऊंची जातियों के लोग ही उठा लेंगे, क्योंकि लाभ उठाने के लिए साधन तो उन्हीं के पास हैं. पहले पिछड़ों ख़ास कर यादवों को किसी न किसी तरीक़े से साधन संपन्न बना देना है, फिर सरकार की ओर से विकास करना है. उधर लालू-राबड़ी के शासन काल में राज्य में राजनीति का अपराधीकरण और भ्रष्टाचार इतना बढ़ा कि पटना हाई कोर्ट को कई बार यह कहना पड़ा कि बिहार में जंगल राज है. एक बार तो हाई कोर्ट ने यह भी कह दिया कि जंगल राज के भी कुछ कायदे-क़ानून होते हैं, बिहार में तो वह भी नहीं है.

लालू प्रसाद-राबड़ी देवी के शासन काल में सरकारी व राजनीतिक स्तरों पर भ्रष्टाचार का यह हाल रहा कि लगभग डेढ़ दशक में बिहार के मुख्यमंत्री, मंत्री, विधायक, सांसद, आईएएस तथा आईपीएस स्तर की कई हस्तियां इन आरोपों में जेल गईं, पर इससे कोई सबक नहीं सीखा गया.

इस पृष्ठभूमि में 2005 में जब नीतीश कुमार ने राज्य में सत्ता संभाली तो उन्होंने एक साथ कई महत्वपूर्ण काम किए. नीतीश कुमार ने लालू और रामविलास के जातीय वोट बैंकों को बारी-बारी से तोड़ना शुरू कर दिया. इन जातीय वोट बैंकों के सहारे ही ये नेता निश्चिंत होकर राज कर रहे थे. कांग्रेसी शासन काल में ही जातीय वोट बैंक का चलन शुरू हुआ था. जातीय वोट बैंक के मैनेजर नेताओं को आम बिहारियों की भलाई की ज़रूरत महसूस नहीं हो रही थी. दूसरी ओर नीतीश सरकार ने ग्राम पंचायतों और नगर निगमों में अति पिछड़ों के लिए 20 प्रतिशत स्थान आरक्षित कर दिया. साथ ही महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए. शिक्षकों की बहाली में भी महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण मिला. नीतीश सरकार ने महादलित आयोग बना कर उसकी सिफ़ारिशें प्राप्त कीं और उनके लिए सरकारी धन की अलग से व्यवस्था की. इसी तरह पिछड़े मुसलमानों के लिए भी अलग से काम हुए. इस तरह पहले से गठित जातीय वोट बैंक टूटने लगे.

इसके अलावा शैक्षणिक संस्थानों व सरकारी दफ्तरों में लगभग तीन लाख बहालियां हुईं. पद वर्षों से खाली थे, पर ये बहालियां जानबूझ कर रोक कर रखी गई थीं. डर था कि इनमें से काफी नौकरियां सवर्णों को मिल जाएंगी. अविकास के रेगिस्तान बिहार में नीतीश कुमार के ये सब काम वर्षा की फुहार की तरह थे जिन्हें सभी समुदायों के लोगों ने पसंद किया.

दरअसल जातीय वोट बैंक तो बिहार में बन गए थे, पर हर वोट बैंक में शामिल कुछ ख़ास जातियों को ही सरकारी, ग़ैर सरकारी व राजनीतिक लाभ मिला करते थे. इन वोट बैंकों के उपेक्षित हिस्सों को भी लाभ दिला कर नीतीश कुमार ने वोट बैंक के शिलाखंड को तोड़ दिया. इससे लालू प्रसाद और रामविलास पासवान को राजनीतिक रूप से काफी नुकसान हुआ. महात्मा गांधी के अंतिम व्यक्ति की तर्ज़ पर नीतीश सरकार ने पिछड़ों में से अति पिछड़ों को अलग कर उन्हें ताक़त प्रदान की. पूरे समाज में से महिलाओं को अलग करके उनका सशक्तीकरण किया. डा.राम मनोहर लोहिया सभी जातियों की महिलाओं को पिछड़ा मानकर उन्हें विशेष अवसर देने के पक्षधर थे. दलितों में महादलितों की नीतीश सरकार ने पहचान कराई और मुसलमानों में से पसमांदा मुस्लिमों की खोज ख़बर ली. यह काम उसी काम का विस्तार था, जो पिछड़ों को आरक्षण देकर वी.पी.सिंह की सरकार ने उन्हें सशक्त बनाया था.

नीतीश के इन क़दमों से प्रतिपक्ष को हुए राजनीतिक नुकसान की एक झलक पहले ही मिल चुकी थी, पर लालू प्रसाद और रामविलास पासवान ने उससे कोई सबक नहीं लिया. 2005 के बाद बिहार में लोकसभा के तीन और विधानसभा के तीन उप चुनाव हुए थे. राज्य के विभिन्न इलाकों में हुए इन सभी उप चुनावों में नीतीश कुमार के नेतृत्व वाले राजग ने जीत हासिल कर ली. ऐसा कम ही होता है कि अपने कार्यकाल के आरंभिक तीन साल में कोई सत्ताधारी दल सभी उप चुनाव जीत जाए. इससे सबक लेकर लालू प्रसाद और रामविलास पासवान ने अपनी कार्य पद्धति बदली होती तो उन्हें आज की तरह राजनीतिक दुर्दिन नहीं देखना पड़ता.

सबसे बड़ा झटका लालू प्रसाद और रामविलास पासवान को क़ानून-व्यवस्था में भारी सुधार के कारण लगा. 2005 में जब बिहार विधान सभा के चुनाव होने को थे तो राज्य पुलिस मुख्यालय सूत्रों से यह पता चला था कि राज्य में लगभग 40 हज़ार फरार वारंटी हैं. यानी इतने लोगों के ख़िलाफ़ अदालतों ने गिरफ्तारी के वारंट तो जारी कर दिए हैं, पर पुलिस उन्हें पकड़ नहीं पा रही है या यूं कहिए कि उन्हें जानबूझ कर छुट्टा छोड़ दिया गया है. तब राज्य में कोई सुरक्षित नहीं था. यहां तक कि मंत्रियों और विधायकों के परिजन भी अपहृत हो रहे थे. बाहुबली खुलेआम अपनी आधुनिक गाड़ियों के शीशे से बाहर राइफल की नाल निकाल कर सड़कों पर घूमा करते थे और मनमानी किया करते थे. देर शाम या रात में बिहार में शरीफ लोग अपने-अपने घरों से तभी निकलते थे, जब एकदम ज़रूरी होता था, क्योंकि घर से निकलने के बाद कौन सुरक्षित लौटेगा और कौन नहीं लौटेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं था.

नीतीश कुमार के सवा तीन साल का कार्यकाल बीतते-बीतते यह आंकड़ा सामने आया कि बिहार की त्वरित अदालतों ने 32 हज़ार छोटे-बड़े अपराधियों को सजाएं दी हैं. ऐसे सज़ायाफ्ता लोगों में कई बाहुबली सांसद, विधायक, पूर्व सांसद, पूर्व विधायक तथा माफिया सरदार शामिल हैं. अभी सजाएं देने का काम जारी है.

इन लोगों के सज़ायाफ्ता हो जाने के बाद अराजक बन चुके बिहार की क़ानून-व्यवस्था पर काफी अनुकूल असर पड़ा है और आम जनता इससे अब काफी ख़ुश है. अब देर रात लोगबाग सड़कों पर घूम रहे हैं और रात में दुकानें जल्दी बंद नहीं होती हैं. चुनावी हिंसा के लिए कुख्यात बिहार में लोकसभा के इस चुनाव में एक भी बाहुबलीजनित हत्या नहीं हुई. हां, नक्सलियों के वोट बहिष्कार अभियान के तहत ज़रूर कुछ जानें गईं, पर वह तो एक अलग देशव्यापी समस्या है.

बिहार में 2001-2002 का योजना बजट मात्र 1400 करोड़ रुपये का था. जबकि पिछले वित्तीय वर्ष में लगभग 12 हज़ार करोड़ रुपये खर्च हुए. नतीजतन सरकारी विकास कार्य बिहार में अब हर जगह थोड़े-बहुत दिखाई पड़ रहे हैं. इसका लाभ राजग को इस चुनाव में मिला है. नीतीश कुमार ने मतदाताओं से कहा था कि मैं आपसे अपने काम की मजदूरी वोट के रूप में मांगने आया हूं. मतदाताओं ने मजदूरी दे दी.

इस चुनाव नतीजे ने लालू प्रसाद और रामविलास पासवान को कई तरह के सबक दिए हैं, यदि वे लेना चाहें. सबक तो नीतीश कुमार के लिए भी है. नीतीश कुमार के लिए सबक यह है कि वह इस भारी जीत के कारण एकाधिकारवादी नहीं बनें. 1971 की जीत के बाद इंदिरा गांधी और 1991 के लोकसभा चुनाव में बिहार में जीत के कारण लालू प्रसाद एकाधिकारवादी बन गए थे. दूसरी बात यह है कि बिहार सरकार के दफ्तरों में आज भ्रष्टाचार इतना अधिक बढ़ गया है, उतना तो लालू-राबड़ी के राज में भी नहीं था. इससे आम जन काफी परेशान हैं. जिस तरह त्वरित अदालतों के जरिए नीतीश सरकार ने 32 हज़ार अपराधियों को सज़ा दिलवा कर राज्य में अमन चैन कायम किया है, क्या उसी तरह त्वरित अदालतों के जरिए जल्द से जल्द उन भ्रष्ट अफसरों व कर्मचारियों को सज़ा दिलाई जाएगी जो हाल के महीनों में घूस लेते हुए पकड़े गए हैं? याद रहे कि बिहार सरकार के दफ्तरों में रिश्वत की दर लालू-राबड़ी के जमाने की अपेक्षा अधिक हो चुकी है.

लालू प्रसाद के लिए सबक यह है कि अब खोखले व एकतरफा सांप्रदायिक सद्भाव और आंशिक सामाजिक न्याय से काम नहीं चलेगा. अल्पसंख्यकों के आर्थिक कल्याण के लिए भी काफी कुछ उन्हें करना पड़ेगा. इधर सामाजिक न्याय को भी समावेशी बनाना होगा. यानी पिछड़े समुदाय के एक छोटे व दबंग हिस्से को ही लाभ पहुंचाने से काम नहीं चलेगा. आम ग़रीबों और पिछड़ों को कोई सरकार लाभ पहुंचाना चाहे तो उसे भ्रष्टाचार पर काबू पाना पड़ेगा और राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाना पड़ेगा, पर इसके लिए इन दोनों नेताओं को अपनी पूरी राजनीतिक संस्कृति में ही बदलाव करना पड़ेगा. क्या वे ऐसा कर पाएंगे? इस सिलसिले में एक बात की चर्चा ज़रूरी है. एक तरफ इन दिनों बिहार की नीतीश सरकार छोटे-बड़े अपराधियों को अदालतों से सज़ा दिलवाने की व्यवस्था करा रही है और दूसरी तरफ रामविलास पासवान अपने चुनावी सभा में मंचों पर रखी कुर्सियों पर अपने बाएं-दाएं दो माफियाओं को बैठा कर भाषण दिया करते थे. ऐसा करके आख़िर वे जनता को क्या संदेश दे रहे थे? दूसरी ओर, लालू प्रसाद माफिया उम्मीदवारों व उनके रिश्तेदारों के पक्ष में प्रचार कर रहे थे. क्या रामविलास पासवान और लालू प्रसाद इस बात से कोई सबक लेंगे कि इस लोकसभा चुनाव में पक्ष-विपक्ष के सारे माफिया, बाहुबली और अपराधी तत्व और उनके रिश्तेदार चुनाव हार गए? यानी क़ानून-व्यवस्था सुधर जाने के कारण अब मतदाताओं को अपनी रक्षा के लिए माफियाओं और अपराधियों की ज़रूरत भी नहीं रह गई है? आम तौर से अपराधी तत्व अपनी-अपनी जातियों के रक्षक बने हुए थे, क्योंकि पुलिस व प्रशासन तो आम तौर पर किसी की रक्षा करने का काम ही भूल चुके थे.

ऐसा दसियों साल से बिहार में चल रहा था जो नीतीश कुमार के सत्ता में आने के बाद काफी कम हो गया है. याद रहे कि इस बार नीतीश कुमार के दल के बाहुबली भी चुनाव हार गए. इन्हें नाजायज़ तरीक़े से चुनाव जितवाने के लिए मुख्यमंत्री ने कुछ नहीं किया, जबकि इस काम के लिए मतगणना के दिन मुख्यमंत्री पर बहुत दबाव पड़ा था. ऐसा निष्पक्ष चुनाव बिहार की नई राजनीतिक संस्कृति के कारण संभव हो सका.

यानी बिहार में एक राजनीतिक संस्कृति उभर रही है जो नीतीश कुमार ने शुरू करने की कोशिश की है. हालांकि राजग में भी इतने अधिक भ्रष्ट व अपराधी तत्व अब भी मौजूद हैं कि उनको सही रास्ते पर लाने में नीतीश कुमार के पसीने छूट रहे हैं. लालू प्रसाद और रामविलास पासवान यदि अपने बाहुबलियों व भ्रष्ट तत्वों के ख़िलाफ़ क़दम उठाएंगे तब तो उन्हें और भी अधिक परेशानी होगी. पर यदि राजनीति में अपनी प्रासंगिकता एक बार फिर कायम करनी हो तो यह नई राजनीतिक संस्कृति उन्हें भी अपनानी ही पड़ेगी जिसकी शुरुआत नीतीश कुमार ने करके भारी चुनावी जीत हासिल की है. अब जनता इसी संस्कृति को पसंद करने लगी है. बिहार में लोकतंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए सुधरे हुए लालू प्रसाद और रामविलास पासवान की ज़रूरत पड़ेगी, क्योंकि इस तरह के मज़बूत नेता जल्दी तैयार नहीं हुआ करते. लंबे संघर्ष, परिश्रम व कोशिशों के बाद कोई लालू प्रसाद या रामविलास पासवान बनता है. कांग्रेस को इस बात की ग़लतफहमी है कि बिहार में भी वह अकेली ही विकल्प बन जाएगी. कांग्रेस का जनाधार बिहार में काफी कम हो चुका है. यदि उसे नीतीश सरकार के ख़िलाफ़ उठ खड़ा होना है तो फिलहाल तो कांग्रेस को राजद को साथ लेना ही होगा, क्योंकि बिहार और उत्तर प्रदेश में फ़र्क़ है.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

लालू प्रसाद को 1991 के लोकसभा चुनाव में पिछड़ों की लगभग सभी जातियों का समर्थन मिला था. 1990 में रथयात्रा के दौरान एल.के. आडवाणी की समस्तीपुर में गिरफ्तारी के कारण अल्पसंख्यकों का भी समर्थन लालू प्रसाद को हासिल था. वैसे भी भागलपुर दंगे के बाद 1989 से ही अल्पसंख्यक कांग्रेस से बिदके हुए थे, पर समय बीतने के साथ लालू प्रसाद ने ख़ुद को यादव-मुस्लिम के बीच ही समेट लिया.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

क्या कहता है बदला हुआ मुस्लिम दिमाग़

ए.यू.आसिफ़

इस बार के आम चुनाव के परिणामों पर नज़र डालते ही साफ़ तौर पर अंदाज़ा हो जाता है कि मुस्लिम रुझान बदला है और कांग्रेस की जो बेहतर स्थिति बनी है उसमें इस बदले हुए रुझान का बड़ा योगदान है. वैसे यह अलग बात है कि इस बदले हुए रुझान में भी उसकी अपनी हस्ती कम या गुम होती हुई प्रतीत हो रही है. आंकड़ों के अनुसार इस बार पूरे देश से मात्र 30 मुसलमान उम्मीदवार ही निर्वाचित हुए हैं. इनमें उत्तर प्रदेश से सात, पश्चिम बंगाल से सात, जम्मू-कश्मीर से चार, बिहार से तीन, केरल से तीन, असम से दो, तमिलनाडु से दो, आंध्र प्रदेश एवं लक्षद्वीप से एक-एक शामिल हैं. इससे यह अंदाज़ा होता है कि मात्र आठ राज्यों एवं एक केंद्र शासित प्रदेश से ही 15 वीं लोकसभा में मुसलमानों को प्रतिनिधित्व मिल पाया है, जबकि 20 ऐसे राज्य और पांच ऐसे केंद्र शासित प्रदेश हैं जहां से एक भी मुसलमान नई लोकसभा में नहीं पहुंच पाया. हालांकि देश के विभिन्न भागों में 138.2 मिलियन (13.4 प्रतिशत) मुसलमान हैं.

जिन राज्यों से कोई भी मुस्लिम प्रतिनिधि नहीं चुना गया है, वे हैं महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तरांचल, उड़ीसा, पंजाब, हरियाणा, नगालैंड, मिज़ोरम, मेघालय, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, गोवा एवं सिक्किम. इसी प्रकार बचे हुए केंद्र शासित प्रदेशों चंडीगढ़, अंदमान निकोबार द्वीप समूह, दादर नगर हवेली, दमन व दियु और पांडिचेरी हैं. अजीब बात यह है कि राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से भी कोई मुस्लिम प्रतिनिधि नहीं चुना गया है.

पार्टियों के लिहाज़ से भी स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं है. इस बार कांग्रेस के 11, बसपा के चार, नेशनल कांफ्रेंस के तीन, तृणमूल कांग्रेस के दो, इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के दो एवं जद (यू)-भाजपा, डीएमके, माकपा, ऑल इंडिया मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन एवं असम यूनाइटेड डेमोक्रटिक पार्टी के एक-एक मुस्लिम सांसद बने हैं. इनके अलावा एक आज़ाद उम्मीदवार भी कामयाब हुआ है और वह लद्दाख से है. हालांकि वह बाद में नेशनल कांफ्रेंस में शामिल हो गया है. बहरहाल, यह बात खटकती है कि विभिन्न क्षेत्रीय पार्टियों का कोई भी मुस्लिम प्रतिनिधि इस बार लोकसभा में नहीं पहुंचा है. इनमें समाजवादी पार्टी ख़ास तौर से उल्लेखनीय है. 14 वीं लोकसभा में सपा के उत्तर प्रदेश से सात मुस्लिम सदस्य थे. सपा ने इस बार यहां से 12 उम्मीदवार खड़े किए थे, जिनमें सहारनपुर से रशीद मसूद, कैराना से उनके बेटे शादां मसूद, मुरादाबाद से हाजी रिज़वान, संभल से इक़बाल महमूद, अमरोहा से महबूब अली, मेरठ से शहिद मंजूर, अलीगढ़ से ज़फ़र आलम, पीलीभीत से रियाज़ अहमद, लखनऊ से नफीसा अली, बहराइच से शब्बीर अहमद बाल्मीकि, श्रावस्ती से रुबाब सईदा, घोसी से अरशद जमाल जैसे दिग्गज नेता शामिल थे. ये सभी हार गए. सपा के इतिहास में शायद यह पहला अवसर है जब इसके मुस्लिम उम्मीदवारों में से कोई भी सफल नहीं हुआ है. उत्तरप्रदेश में बसपा ने बहरहाल अपने चार मुस्लिम सांसदों की संख्या बनाए रखी है. यही हाल कमोबेश राजद का भी हुआ है. राजद के कई मुस्लिम नेता लोकसभा के लिए बिहार से निर्वाचित होते थे, पर इस बार उसके तीन हाई प्रोफाइल मुस्लिम नेता अपना प्रदर्शन दोहराने में नाकाम रहे. इनमें से एक पूर्व मानव संसाधन राज्यमंत्री मोहम्मद अशरफ अली फ़ातमी हैं. कई बार दरभंगा से जीत चुके फ़ातमी इस बार भाजपा के कीर्ति आज़ाद से पराजित हो गए. उन्होंने दरभंगा क्षेत्र के विकास में शैक्षिक स्तर पर कई उल्लेखनीय क़दम उठाए थे, पर कुछ काम न आया. इसी तरतह राजद के ख़िलाफ़ चली हवा में किशनगंज से पूर्व मंत्री मोहम्मद तस्लीमुद्दीन भी बह गए थे. वह भी कई बार से सांसद बनते चले आ रहे थे. कांग्रेस के टिकट पर प्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान एवं ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल के उपाध्यक्ष मौलाना असरारुल हक़ क़ासमी ने उन्हें चुनावी दंगल में पछाड़ दिया. तीसरे नेता सीवान के शहाबुद्दीन हैं, जिन्होंने कई मुक़दमे में आरोपित होने के कारण ख़ुद के बजाय पत्नी हिना शहाब को राजद के टिकट पर चुनाव में खड़ा किया था. राजद को आशा थी कि शहाबुद्दीन की पत्नी के नाम पर यह सीट तो निकल ही जाएगी, परंतु ऐसा हो न सका और हिना शहाब हार गईं. बिहार में लालू यादव का करिश्मा बिल्कुल काम नहीं आया. कहा जाता है कि इसके पीछे भी मुसलमानों की उनसे दूरी ही मुख्य कारण रहा. लोजपा नेता रामविलास पासवान को भी मुसलमानों के समर्थन का भ्रम था, लेकिन उनका भी यह भ्रम टूट गया. शरद पवार की राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी भी अपनी मुस्लिम समर्थक छवि के लिए प्रसिद्ध रही है. इस बार उसके टिकट पर भी कोई मुसलमान चुना नहीं जा सका. तारीक़ अनवर जैसे प्रखर नेता भी जनता द्वारा नकार दिए गए.

बसपा सुप्रीमो मायावती ने पिछली बार की सांसदों की संख्या को बरक़रार तो रखा है, पर उन्हें मुस्लिम समर्थन कम मिलने की शिकायत है. उन्होंने तो इसका उल्लेख चुनाव परिणाम आने के बाद अपनी पहली प्रेस कांफ्रेंस में इसका विशेष रूप से वर्णन किया और क्रोध भी प्रकट किया.

दक्षिण भारत की पार्टियों में एक मात्र डीएमके है जिसके टिकट पर वेल्लोर (तमिलनाडु) से अब्दुर रहमान सफल हुए हैं. वैसे वह इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के नेता हैं और उन्होंने डीएमके के टिकट पर चुनाव लड़ा था. डीएमके को छोड़कर तमिलनाडु में एआईएडीएमके, आंध्रप्रदेश में तेलुगु देशम पार्टी, कर्नाटक में जनता दल (सेकुलर), केरल में माकपा, उड़ीसा में बीजू जनता दल के टिकट पर भी कोई मुस्लिम निर्वाचित नहीं हुआ है और कांग्रेस को छोड़कर अन्य पार्टियों की तरह इन पार्टियों के प्रति भी मुस्लिम रुझान बदला है. इससे ये सभी पार्टियां चिंतित हैं.

दिलचस्प बात यह कि इस बार कई मुस्लिम पार्टियों एवं मोर्चों ने भी अपने उम्मीदवार खड़े किए थे. इनमें से अधिकतर को असफलता का मुंह देखना पड़ा. इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग एवं ऑल इंडिया मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन तो पुरानी पार्टी थी. उनके दो और एक उम्मीदवार फिर जीतने में सफल रहे. अलबत्ता नार्थ ईस्ट में बसपा के तर्ज़ पर उभर रही असम यूनाइटेड डेमोक्रेटिक पार्टी ने पहली बार संसद में प्रवेश किया. इसके अध्यक्ष मौलाना बदरुद्दीन अजमल क़ासमी धुबरी से 1.89 लाख वोटों से सफल हुए हैं. एक विशेष बातचीत में उन्होंने कहा कि उनको लेकर एयूडीएफ के दस सदस्य तो असम विधानसभा में हैं ही और अब यह संसद में भी उनकी पार्टी पहुंच गई है. उन्हें शिकायत है कि अंतिम दौर में भी करीमगंज से एयूडीएफ के राजेश मल्ला 48 हज़ार वोटों से आगे चल रहे थे, पर अचानक सब कुछ बदल गया और उनका नाम दृश्य से ग़ायब हो गया. उन्होंने संबंधित अधिकारी से इस पर शिकायत भी दर्ज़ कराई है. वैसे यह सही भी है कि राजेश मल्ला के निर्वाचित होने की ख़बर मीडिया में भी एक दिन बाद तक आती रही थी.

यूपीए ने एयूडीएफ के महत्व को देखते हुए उसे अपने गठबंधन में शामिल होने का ऑफर दिया है. इसकी कार्यकारिणी के सदस्य मौलाना बुरहानुद्दीन क़ासमी का कहना है कि एयूडीएफ इस पर विचार कर रही है और जल्द ही कोई निर्णय लेगी. वैसे इनका यह भी कहना है कि एयूडीएफ को अपनी बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण इसकी बहुत अधिक आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस बार असम में उसे 17.10 प्रतिशत मत मिला है और एक सीट पर सफलता के अलावा दो सीटों पर वह दूसरे व बाक़ी छह पर तीसरे नंबर पर रही है. इससे उसे आशा है कि उसका भविष्य सुरक्षित व उज्जवल है. ज्ञात रहे कि असम में 33.91 प्रतिशत मत लेकर कांग्रेस ने सात सीट, भाजपा ने 17.22 प्रतिशत मत पाकर चार सीट एवं एजीपी ने 12.16 प्रतिशत लेकर एक सीट हासिल कर पाई है.

अन्य मुस्लिम पार्टियों में उलेमा काउंसिल, पीस पार्टी ऑफ इंडिया, सेकुलर एकता पार्टी, नेशनलिस्ट लोकतांत्रिक पार्टी एवं मुस्लिम मजलिस ने मुस्लिम वोट अवश्य हासिल किया, पर यह सब मत विभाजन में परिवर्तित हो गया और इससे भाजपा ने लाभ उठाया. शायद इस तथ्य को महसूस करते हुए वरिष्ठ भाजपा नेता डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने इसीलिए कहा है कि भाजपा को अपनी स्थिति को और अधिक मजबूत करने के लिए कुछ और मुस्लिम उम्मीदवार खड़े करने चाहिए थे.

लखनऊ से उलेमा काउंसिल के उम्मीदवार व इतिहासकार अमरेश मिश्र ने बताया कि उन्हें एयूडीएफ के साथ-साथ उलेमा काउंसिल से बड़ी आशाएं थीं, परंतु वह सब धूल में मिल गईं. वह कहते हैं कि अब वह मुस्लिम-ब्राह्मण एकता को सामने रखते हुए नई रणनीति बनाएंगे. उनका कहना है कि उलेमा को लेकर अनुभव हासिल करना अच्छी बात थी. लेकिन इन उलेमाओं के पास राजनीतिक परिपक्वता और दृष्टि नहीं है. 2009 के चुनाव परिणामों से साफ है कि मुसलमानों ने बहुत ही होशियारी से वोटिंग की है. इसका प्रभाव दिल्ली, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, राजस्थान, आंध्रप्रदेश जैसे राज्यों में देखा जा सकता है. उत्तर प्रदेश में भाजपा व सपा की तुलना में 21 कांग्रेसी उम्मीदवारों की सफलता का सबसे बड़ा कारण मुस्लिम फैक्टर माना जा रहा है. मुसलमानों ने सेकुलर उम्मीदवारों के हक़ में काफी हद तक मत दिया, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि मुस्लिम मत का विभाजन नहीं हुआ. मुस्लिम मत के विभाजन के कारण ही उलेमा काउंसिल एवं बसपा दोनों हारी और भाजपा कामयाब हुई. कांग्रेस और उसके नेतृत्व वाली यूपीए की सफलता के कई कारण हैं. दिल्ली के उर्दू दैनिक-हमारा समाज-के एसोसिएट एडिटर एवं मुस्लिम मामलों के विशेषज्ञ अफ़ज़ल मिसबाही कहते हैं कि मनमोहन सिंह की सरकार ने बहुत से ऐसे कार्य किए हैं जिसने देश के तमाम नागरिक समेत अल्पसंख्यकों को भी आकर्षित किया. अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों के कल्याण व इंपावरमेंट के लिए जो क़दम उठाए गए उनसे मुसलमानों में कांग्रेस की छवि बेहतर हुई. उनका यह भी कहना है कि हालांकि सच्चर कमेटी की रपट पर अब तक संसद में बहस नहीं हो सकी है और उसकी सिफारिशों पर पूरे तौर से अमल भी नहीं हो सका है, इसके बावजूद मुसलमानों ने यह महसूस कर लिया है कि अब यूपीए सरकार उनके बारे में सोच रही है और आगे से इसके लिए काम करने का वादा कर रही है. वह यह भी कहते हैं कि पिछली बार उत्तर प्रदेश में संसदीय चुनाव में कांग्रेस को मात्र नौ सीटें मिली थीं जबकि इस बार उसे 21 सीटों पर सफलता मिली है. उनके विचार में कांग्रेस की इस मज़बूती से भविष्य की राजनीति का मैप तैयार किया जा सकता है. अफ़ज़ल मिसबाही के अनुसार बिहार की भी स्थिति कमोबेश यही है. वह कहते हैं कि उस राज्य में कांग्रेस को दो ही सीटें मिली हैं, पर 20 सीटों पर उसके उम्मीदवार दूसरे स्थान पर हैं और कुछ तो मामूली अंतर से हारे हैं. उनका कहना है कि मुसलमानों को आशा है कि नई सरकार मुस्लिम सांसदों को अल्पसंख्यक आयोग, हज कमेटी, बक्फ बोर्ड तक सीमित रखने के बजाय राष्ट्रीय स्तर पर सेवा करने का अवसर प्रदान करेगी और उनके शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक इंपावरमेंट की ओर सच्चर कमेटी रपट की रोशनी में अमली क़दम उठाएगी.

आम अहसास यह है कि मुसलमानों ने यह महसूस कर लिया है कि क्षेत्रीय पार्टियों में उनका भला नहीं है. इसलिए कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय स्तर की धर्मनिरपेक्ष पार्टी ही उनके लिए मसीहा बन सकती है. अब देखना यह है कि कांग्रेस और यूपीए मुसलमानों की उम्मीद पर कितना खरे उतरते हैं.

पार्टियों के लिहाज़ से भी स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं है. इस बार कांग्रेस के 11, बसपा के चार, नेशनल कांफ्रेंस के तीन, तृणमूल कांग्रेस के दो, इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के दो एवं जद (यू)-भाजपा, डीएमके, माकपा, ऑल इंडिया मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन एवं असम यूनाइटेड डेमोक्रटिक पार्टी के एक-एक मुस्लिम सांसद बने हैं.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

लोकसभा में मुसलमान (1952-2009)

वर्ष	कुल सदस्य	मुस्लिम सदस्य	आबादी अनुसार संख्या होती
1952	489	21	49
1957	494	24	49
1962	494	23	53
1967	520	29	56
1971	518	30	58
1977	542	34	61
1980	529	49	59
1984	542	46	62
1989	529	33	60
1991	534	28	65
1996	543	28	66
1998	543	29	66
1999	543	32	66
2004	543	39	66
2009	543	30	66
कुल संख्या		474	902

15 वीं लोकसभा में 30 मुस्लिम सांसद

नाम	पार्टी	क्षेत्र
असदुद्दीन उवैसी	मजलिस इत्तेहादुल	हैदराबाद (आं.प्र.) मुसलमीन
मौलाना बदरुद्दीन	असम यूनाइटेड	धुबरी (असम)
अजमल क़ासमी	डेमोक्रेटिक पार्टी	
इसमाईल हुसैन	कांग्रेस	बारपेटा (असम)
मौलाना असरारुल हक़ क़ासमी	कांग्रेस	किशनगंज (बिहार)
डॉ. मुनाजिर हुसैन	जद (यूनाइटेड)	बेगूसराय (बिहार)
सैयद शाहनवाज़ हुसैन	भाजपा	भागलपुर (बिहार)
शरीफुद्दीन शारीक	नेशनल कांफ्रेस	बारमूला (जम्मू-कश्मीर)
डॉ. फारूक़ अब्दुल्लाह	नेशनल कांफ्रेस	श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर)
मिर्जा महबूब बेग	नेशनल कांफ्रेस	अनंतनाग (जम्मू- कश्मीर)
हसन खां	निर्दलीय	लद्दाख़ (जम्मू-कश्मीर)
ई अहमद	इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग	मलप्पुरम (केरल)
ई टी मोहम्मद बशीर	इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग	पोनानी (केरल)
एम आई शाहनवाज़	कांग्रेस	वयनाड (केरल)
अब्दुर रहमान (डीएमके टिकट पर)	इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग	वेल्लोर (तमिलनाडु)
हारुन रशीद जे एम	कांग्रेस	थेनी (तमिलनाडु)
तबस्सुम बेग़म	बसपा	कैराना (उ.प्र.)
क़ादिर राणा	बसपा	मुज़फ्फरनगर (उ.प्र.)
डॉ. शफीकुर्रहमान बर्क	बसपा	संभल (उ.प्र.)
क़ैसर जहां	बसपा	सीतापुर (उ.प्र.)
मोहम्मद अज़हरुद्दीन	कांग्रेस	मुरादाबाद (उ.प्र.)
ज़फर अली नक़वी	कांग्रेस	खीरी (उ.प्र.)
सलमान खुर्शीद	कांग्रेस	फ़र्रुख़ाबाद (उ.प्र.)
मौसम नूर	कांग्रेस	मालदा-उत्तर (प.बं.)
अबु हाशिम खां चौधरी	कांग्रेस	मालदा-दक्षिण (प.बं.)
अब्दुल मन्नान हुसैन	कांग्रेस	मुर्शीदाबाद (प.बं.)
शेख़ नुरुल इस्लाम	तृणमूल कांग्रेस	बसीरहाट (प.बं)
सुलतान अहमद	तृणमूल कांग्रेस	उलुबेरिया (प.बं.)
शेख़ सइदुल हक़	माकपा	बर्दवान-दुर्गापुर (प.बं.)
मोहम्मद हमदुल्ला सईद	कांग्रेस	लक्षद्धीप
कबीर सुमन	तृणमूल कांग्रेस	जादवपुर (प.बं.)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

एम जे अकबर

भाजपा और वाम के वजूद का सवाल

हार का सामना करना मुश्किल भले ही होता है, लेकिन अपने वजूद को बचाने की मजबूरी एक डूबते सपने का शोक मनाने से कहीं ज़्यादा बड़ी है. भाजपा और वामदलों दोनों के सामने अब वजूद का संकट है, और उन्हें अपने सिद्धांतों के उन हिस्सों को, जो क्रमश: एक के विकास को रोकने वाले और दूसरे की सफलता को धूमिल करने वाले हैं, बदलने के लिए ईमानदारी की ज़रूरत पड़ेगी. भाजपा को शायद हमारे देश के बारे में एक मौलिक सच पर विचार करना चाहिए. भारत एक सेकुलर राष्ट्र इसलिए नहीं है, क्योंकि भारतीय मुस्लिम इसे सेकुलर देखना चाहते हैं. वह सेकुलर है, क्योंकि भारतीय हिंदू ऐसा चाहते हैं.

भाजपा में सबको सांप्रदायिक कहना ग़लत होगा, लेकिन अटल विहारी वाजपेयी द्वारा गढ़ी गई सबको साथ लेकर चलने वाली छवि को बचाए रखने के लिए किए गए लालकृष्ण आडवाणी के प्रयासों को पार्टी के उन नेताओं के बयानों ने धूमिल कर दिया जो यह नहीं समझते हैं कि टकराव की भाषा का समय अब बीत चुका है. वरुण गांधी का अपरिपक्व भाषण इसका सबसे महत्वपूर्ण मोड़ था. भाजपा ने इसकी निंदा भले ही की, पर केंद्रीय राजनीति की खोज में अतिवाद को खो देने के डर से इसे पूरी तरह से छोड़ा भी नहीं. अभी जो साफ दिखाई दे रहा है वह उस समय उतना साफ नहीं था. वरुण गांधी की उम्मीदवारी को ख़त्म कर देना चाहिए था. इसके उलट वरुण अपनी इस छद्म-आक्रामक छवि के मोह में पड़ गए और अपने उन बयानों और चित्रों में अपनी इस छवि को दिखाने लगे जो टीवी के माध्यम से हर घर तक पहुंच रहे थे. इस युवा गांधी ने स्वयं को उत्तर प्रदेश के भावी मुख्यमंत्री के तौर पर भी देखना शुरू कर दिया. रोचक बात है कि स्थानीय भाजपा नेता समझ रहे थे कि यह घातक है. मध्य प्रदेश भाजपा ने साफ-साफ कह दिया कि उन्हें वरुण गांधी की ज़रूरत नहीं है. बिहार के नेताओं ने भी राहत की सांस ली, जब नीतीश कुमार ने नरेंद्र मोदी और वरुण गांधी दोनों को बिहार आने का न्यौता भेजने से मना कर दिया.

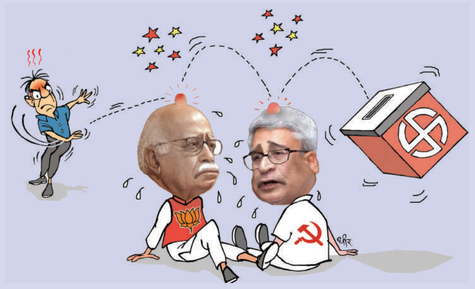

हमारी राष्ट्रीय सोच एक प्रधान इच्छा से तय होती है, जो है बेहतर ज़िंदगी की चाहत. शांति के बिना संपन्नता असंभव है. इसलिए विभाजन की राजनीति, चाहे वह जाति पर आधारित हो या संप्रदाय पर, की जगह इस सहमति ने ले ली है कि शांति के मुद्दे से कोई समझौता नहीं हो सकता.

हमारी राष्ट्रीय सोच एक प्रधान इच्छा से तय होती है, जो है बेहतर ज़िंदगी की चाहत. शांति के बिना संपन्नता असंभव है. इसलिए विभाजन की राजनीति, चाहे वह जाति पर आधारित हो या संप्रदाय पर, की जगह इस सहमति ने ले ली है कि शांति के मुद्दे से कोई समझौता नहीं हो सकता. दूसरी तरफ़ संपन्नता पर हमेशा से समझौता होता रहा है, क्योंकि यह कभी वैश्विक सत्य नहीं रहा. भारत अभी भी कुछ अमीर लोगों वाला एक ग़रीब देश है न कि इसके उलट. ग़रीब भी उभरते भारत की कहानी का हिस्सा बनना चाहते हैं.

यह अजीब है कि मार्क्सवादियों ने इस बात को नहीं समझा. उन्होंने ग्रामीण बंगाल में चोट गंवाए जिसकी वजह इस्लाम नहीं ग़रीबी थी. नंदीग्राम और सिंगुर का संदेश साफ था कि ग़रीबों की ज़मीन छीनकर मध्य वर्ग के लिए नौकरियां बनाई जा रही हैं. नीतीश कुमार जीते, क्योंकि उन्होंने शांति कायम की और समृद्धि के अपने वायदे को समाज के सबसे निचले तबके तक पहुंचाने में सफल रहे. अगली बार देश के मुख्यमंत्रियों की बैठक में वह अपने साथियों के बीच राजदूत का काम करेंगे.

यह और भी अजीब होगा, अगर कोई बंगाल और गुजरात के बीच संभावित तुलना करे. नरेंद्र मोदी के औद्योगिकीकरण का भी नुकसान हो सकता है, अगर वह जल्द कुछ ठोस उपाय नहीं करते. बंगाल के नुकसान नैनो को गुजरात ले जाना तो एक उलझी हुई कहानी का एक हिस्सा मात्र है. ग़रीबों को यह महसूस हो रहा है कि राजनेताओं और उद्योगपतियों के बीच का यह मधुर संबंध या तो धनी लोगों को फायदा दे रहा है या फिर मध्यवर्ग को. भूमिहीन और खेतिहर जनता मोदी के ख़िलाफ़ जा सकती है, अगर वह ग्रामीण गुजरात का उत्थान भी उसी उत्साह और लगन से नहीं करते. तमिलनाडु में द्रमुक बच गया, क्योंकि उसने ग़रीबों को सस्ता चावल और मुफ्त मनोरंजन मुहैया कराया. इस वक्त टेलीविजन कंपनियों में शेयर लगाना फायदेमंद होगा. शायद जल्द ही हरेक राजनीतिक दल मतदाताओं को मुफ्त में टीवी बांटने वाला है. कोलकाता में लाल दीवार में सेंध लग गई. क्या यह अब केवल समय की बात है, कि वाम मोर्चा ध्वस्त हो जाएगा? क्या प्रकाश करात और बुद्धदेव भट्टाचार्य समस्या हैं या समाधान हैं? क्या बंगाल में कोई वैकल्पिक मुख्यमंत्री हो सकता है, जो सुधारों को हथौड़े की सख्ती से लागू करे? चुनाव नतीजों के बाद माकपा पोलित ब्यूरो की मीटिंग में ज़फ़र के माहौल की उम्मीद की जा रही थी, लेकिन अब यहां का माहौल ठंडा ही रहेगा. प्रकाश करात ने तो इस चुनाव की व्याख्या करते हुए कह ही डाला कि-हम असफल हो गए हैं. यह किसी व्यक्ति की असफलता नहीं थी, क्योंकि मार्क्सवादी दलों में फैसले सामूहिक होते हैं. हारे हुओं पर नाक-भौं सिकोड़ना आसान है, लेकिन वहीं एक विरोधाभास भी देखना होगा. केरल और बंगाल में भले ही वाम मोर्चे को याद न किया जाए, लेकिन इसकी कमी दिल्ली में तो खलेगी ही. इसकी वजह यह है कि वाममोर्चा आर्थिक और विदेशी मसलों पर गंभीर बहस तो शुरू करवा ही सका था. यह अहम नहीं है कि वाम गलत था या सही. मसला तो यह है कि इसने एक बहस की शुरुआत की.

यह तो बिल्कुल साफ है कि सुशासन का पुरस्कार मिलता है. नवीन पटनायक की जीत इसका स्पष्ट सबूत है. लेकिन इस चुनाव से राजनेताओं का एक आदर्श प्रोफाइल भी उभरकर सामने आया है. वोटर अब अपने नेता में तीन गुण चाहता है-ईमानदारी, योग्यता और विनम्रता. यही उसने डॉक्टर मनमोहन सिंह में देखा. राहुल गांधी ने कांग्रेस के सपने में भविष्य की छौंक भी लगा दी. उन्होंने सत्ता में अपनी हिस्सेदारी इस चुनाव के जरिए तय कर दी है. संभावना इस बात की बनती है कि आगे आनेवाले भविष्य में सत्ता-हस्तांतरण होगा, ख़ासकर इसलिए क्योंकि कांग्रेस ने न केवल अपने गठबंधन के साझीदारों को ख़ामोश किया है, बल्कि विपक्ष की भूमिका भी सीमित कर दी है.

नीतीश कुमार, नवीन पटनायक, शिवराज सिंह चौहान और रमन सिंह जैसे मुख्यमंत्रियों ने मतदाता की कसौटी के सभी गुण दिखाए. सफलता के ख़तरे असफलता के ख़तरे से अधिक हैं. आलस्य में फंसने का ख़तरा भी मौजूद हो जाता है. अहंकार तो और भी लुभाता है. डॉक्टर मनमोहन सिंह को शासन का अधिकार दिया गया है, लेकिन उनका पहला काम तो सहयोगियों पर नज़र रखने का होगा. सिंह को स्वतंत्रता देकर भारतीय मतदाता ने उनको किसी बहाने से महरूम कर दिया है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

अब सामाजिक एकता व सुधारों पर ज़ोर देने का वक़्त

चुनाव नतीजों ने हरेक राजनीतिक पंडित और कुकुरमुत्तों की तरह पनपते टी वी चैनलों के अनुमानों को ग़लत साबित करते हुए कांग्रेसनीत गठबंधन को लगभग स्पष्ट बहुमत देते हुए इस देश और जनता के भाग्य को अगले पांच वर्षों तक निर्देशित करने का अधिकार दे दिया है. देश के साथ इससे बेहतर और कुछ नहीं हो सकता था, क्योंकि एक खंडित जनादेश का सीधा मतलब होता कि अपना स्वार्थ देखने वाली कई पार्टियों का जमावड़ा सरकार बनाता और देशहित के बजाय केवल अपना हित साधने में लगा रहता. भारतीय मतदाताओं का यह फ़ैसला कुल मिलाकर एक ऐसी पार्टी के पक्ष में गया है जो एक कठिन आर्थिक हालात में देश को स्थिरता दे सकती है. इसके साथ ही उन्होंने क्षेत्रीय दलों को भी मोटे तौर पर नकार दिया है. हां, वे क्षेत्रीय दल ज़रूर जीते जिन्होंने विकास और धर्मनिरपेक्षता के मसले पर ख़ुद को साबित किया-जैसे, बिहार में नीतीश कुमार की पार्टी और उड़ीसा में नवीन पटनायक का दल. लोगों ने उनको भी नकार दिया जो सेकुलर एजेंडे का पालन नहीं कर रहे थे.

अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा ने भारतीय चुनाव पर प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि दुनिया में लोकतंत्र की सबसे बड़ी कसरत पूरी होने से भारत के मज़बूत लोकतंत्र को ताक़त ही मिली है और इस चुनाव ने स्वाधीनता और बहुलतावाद जैसे मूल्यों को ही स्थापित किया है, जिससे भारत हम सभी के लिए एक उदाहरण बनता है. इस प्रतिक्रिया से भारतीय लोकशाही के गुण तो सामने आए हैं, लेकिन साथ ही उन सभी चुनौतियों का खाका भी नई सरकार के सामने स्पष्ट हो गया है, जो निकट भविष्य में उसके सामने आने वाली हैं. डॉक्टर मनमोहन सिंह के कुशल नेतृत्व में बनी नई सरकार और कांग्रेस को सोनिया के नेतृत्व में लोगों की अपेक्षाओं पर खरा उतरना होगा, जिन्होंने अपना विश्वास उनमें व्यक्त किया है. नई सरकार को ख़ास तौर पर वंचितों और शोषितों के कल्याण के अधूरे पड़े एजेंडे को पूरा करना होगा. राजीव गांधी ने आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की और राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई थी, तकनीक पर आधारित उद्योगों पर कर घटाया था और लाइसेंस राज को ख़त्म कर व्यापार और वाणिज्य को बढ़ाने की कोशिश की. उन्होंने दूरसंचार क्रांति के तहत देश को एक किया, पंजाब की संधि की और भारत के लिए कंप्यूटर साक्षरता की शुरुआत की.

नई सरकार और यूपीए के राजनैतिक नेतृत्व के सामने सबसे बड़ा काम सामाजिक एकता को बनाए रखने की दिशा में काम करने का होगा. आज वह धर्म, जाति और क्षेत्र के आधार पर विभाजित है. भारतीय मतदाता ने उन दलों को ख़ारिज कर दिया है, जिनका एजेंडा इन मसलों पर आधारित है. भारतीय राजनीति की अर्थिक नीतियां प्रकृति को न केवल बचाना होगा, बल्कि उसे मज़बूत भी करना होगा. अल्पसंख्यकों, पिछड़ों और वंचित वर्गों के लोगों को मुख्यधारा में लाना होगा. यह अकेले नई सरकार के बस का काम नहीं है, इसके लिए सभी को प्रयास करने होंगे. विपक्ष में बैठे दलों को भी इसके लिए सरकार का सहयोग करना होगा. अल्पसंख्यक नेतृत्व को

हमेशा अलगाव, संदेह के मुद्दों को उठाना छोड़कर अपनी पहचान भारतीय समाज के एक अभिन्न अंग के तौर पर बनानी होगी. उन्हें ऐसे किसी कृत्य के ख़िलाफ़ खड़े होने या आवाज़ उठाने में संकोच नहीं करना चाहिए जो देश की एकता और सुरक्षा के लिए ख़तरा हो, चाहे वह किसी ने भी किया हो. आम जनता प्राय: इस तरह के मुद्दे पर धर्मनिरपेक्ष रवैया अपनाती है, सिर्फ वे लोग जिनका कोई स्वार्थ हो इन मुद्दों को सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश करते हैं, ताकि उनका संकीर्ण मानसिकता वाला एजेंडा आगे बढ़ सके. धर्मनिरपेक्ष ताक़तों की ताक़त मज़बूत करने की ज़रूरत है, ताकि अलगाववादी शक्तियां अपना सिर न उठा सकें. नई पीढ़ी को एक विशेष भूमिका निभानी है और उनके पास राहुल गांधी जैसा नेतृत्व है.

पिछड़ों, वंचितों और समाज के कमज़ोर वर्गों को मुख्यधारा में लाने के लिए आर्थिक विकास का लाभ उन तक पहुंचाना ज़रूरी है. आर्थिक नीतियों का ऐसा खाका खींचने की ज़रूरत है जिससे संपन्नों और वंचितों के बीच की खाई कम हो सके. आर्थिक उदारवाद के फायदे बस अमीरों और ताक़तवरों के दरवाज़ों तक ही नहीं रुक जाने चाहिए, वरना *इंडिया शाइनिंग* की कहानी दुहराई जाएगी. भारतीय जनता ने यूपीए नेतृत्व और डॉ. मनमोहन सिंह, जो एक विश्वप्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं, में विश्वास जताया है. मनमोहनवाद कभी-कभी मुद्दों से भटक सकता है. ऐसी स्थितियों में सोनिया गांधी और अब परिपक्व हो चुके राहुल गांधी के नेतृत्व को यह सुनिश्चित करना होगा कि कांग्रेस की आर्थिक नीतियां आम आदमी की विचारधारा से ही निर्देशित हों.

यह उस समय और ज़रूरी हो जाता है जब दुनिया में मंदी का माहौल है और लोगों के मन में नौकरियां खोने और नौकरियों के अवसर घटने का भय सबसे बड़ा है. भारतीय नेतृत्व को वैश्विक आर्थिक पटल पर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है, ख़ासकर ऐसे समय में जब विकसित देशों और जी-7 देशों ने भारत और चीन के महत्व को मान लिया है और उनसे मंदी से उबारने की उम्मीद भी लगा रहे हैं. भारत को विश्व अर्थव्यवस्था को चलाने वाली संस्थाओं के पुनर्गठन की पुरानी समस्या के हल का प्रयास करना होगा, क्योंकि इस समय विकसित देशों की अपना प्रभुत्व न छोड़ने की पुरानी ज़िद अब कमज़ोर पड़ती जा रही है. भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि मुद्रा कोष और विश्व बैंक का पुनर्गठन हो ताकि वह बदलती विश्व व्यवस्था का आईना बन सके, जहां उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं और गरीब देशों को अधिक प्रतिनिधित्व मिल सके.

नई सरकार को अपराध, कर-चोरी, भ्रष्टाचार और जनता के पैसे के गबन से कमाए गए काले धन को अवैध खातों में जमा करने के मुद्दों को अपनी प्राथमिकता बनाना होगा. इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका भी दायर हुई है और सरकार को नोटिस भी भेजा गया है. नई सरकार को इस मुद्दे पर और ज़ोर-शोर से लगना होगा और बोफोर्स केस में क्वात्रोची को मिली क्लीन चिट से जुड़े विवाद के बावजूद बनी अपनी स्वच्छ छवि को स्थापित करना होगा.

घरेलू मोर्चे पर आर्थिक उदारवाद की प्रक्रिया, जो वाम दलों के समर्थन के कारण पिछली सरकार में बिल्कुल रुक सी गई थी, को उन क्षेत्रों में आगे बढ़ाने की ज़रूरत है जहां आम आदमी को इससे फायदा हो. इन उदारवादी नीतियों का स्वरूप ऐसा हो कि भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक जोखिम से बची रहे. जिन क्षेत्रों पर ध्यान देने की ज़रूरत है उनमें, रियल स्टेट ताकि सबके लिए सस्ता घर उपलब्ध हो सके, शिक्षा ताकि शतप्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके, स्वास्थ्य जिससे सभी ग़रीबों के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं मिल सकें और इससे जुड़े मामले शामिल हैं.

आर्थिक नीतियों से अंतरराष्ट्रीय निवेशकों में विश्वास जगना चाहिए और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये नीतियां लंबे समय के हों और भारत की अर्थव्यवस्था के लिए फायदेमंद हों, और भारत इन निवेशकों के लिए छोटी अवधि के लाभ कमाने का मैदान भर न बन जाए. शेयर बाज़ार को चंद लोगों के प्रभाव से मुक्त कराना होगा ताकि आम जनता उतार-चढ़ाव के खेल में फंसी रहकर पैसे न गंवाती रहे.

इसी तरह बुनियादी ख़ासकर सड़क और बंदरगाहों के रुके हुए प्रोजेक्टों पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है. बीमा क्षेत्र को भी बैंकिंग और अन्य वित्तीय क्षेत्रों की तरह खोलने की ज़रूरत है जिससे यह क्षेत्र भी ज़रूरी निवेश पा सके और आम जनता तक पहुंच सके. नई सरकार को आर्थिक के अलावा चुनाव सुधारों पर भी पहल करके बहस करानी चाहिए. हालांकि इस मामले में हमने पिछले कुछ दशकों में काफी सुधार देखा है. हाल में हुए चुनाव भी हमारे चुनाव आयोग की उपलब्धियों ही दिखाते हैं और हर भारतीय को इन चुनावों की निष्पक्षता पर गर्व होना चाहिए. फिर भी यहां सुधारों की जगह है. नीति निर्धारकों को वोटिंग की बाध्यता, चुने गए उम्मीदवार को वापस बुलाने के अधिकार जैसे मुद्दों पर बहस करनी चाहिए. भारत में वापस बुलाने का अधिकार है सिर्फ छत्तीसगढ़ में है और यह अधिकार पहली बार राज्य के नगर पालिका क़ानून में दिया गया. इसके तहत यहां अब तक तीन सिविक प्रमुखों को पद से बाहर कर दिया गया है. क़ानून के हिसाब से नगर पंचायत (म्यूनिसिपैलिटी) के अध्यक्ष या पार्षद के ख़िलाफ़ वापस बुलाने की कार्रवाई शुरू की जा सकती है, अगर उसने पद पर दो वर्ष पूरे कर लिए हों और तीन-चौथाई पार्षदों ने जिलाधिकारी के पास लिखकर उसमें अविश्वास जताया हो. इस शिकायत के बाद जिलाधिकारी विशेष बैठक बुलाते हैं और तीन-चौथाई बहुमत से इस प्रस्ताव को पद से हटाया गया, वे हैं-

अ) भारती सोनकर, महिला अध्यक्ष, गुंदरेदही नगर पंचायत जिनके पक्ष में 1389 और विपक्ष में 1977 मत पड़े.

ब) सीताराम, अध्यक्ष, नवागढ़ नगर पंचायत जिनके पक्ष में 865 और विपक्ष में 1146 मत पड़े.

स) खोरेन खलखो, महिला अध्यक्ष, राजपुर नगर पंचायत.

भारती सोनकर ने न्यायालय में अपील की लेकिन उच्च और उच्चतम न्यायालय दोनों जगहों पर हार गईं.

कुछ और चुनाव सुधार हैं जिनपर ध्यान देना होगा. एक ही व्यक्ति के दो क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर रोक और किसी तरह (हालांकि यह मुश्किल लगता है) राज्य और लोकसभा चुनावों को एक साथ लाना. वर्तमान में चुनाव तीन स्तरों पर यानी पंचायत, राज्य और संसद के लिए हो रहे हैं. चुनाव की घोषणा के साथ आचार संहिता भी लागू हो जाती है जो सरकार के सामान्य कामकाज में बाधा डालती है. उत्तराखंड जैसे राज्यों में पिछले दो सालों में तीनों स्तरों पर चुनाव हुए हैं और सरकार आचार संहिता के कारण सही से काम नहीं कर पाई.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

आदरणीय संतोष जी,
सादर प्रणाम!

मैं जीवाजी विश्वविद्यालय में पत्रकारिता एवं जनसंचार का विद्यार्थी हूं. आपका साप्ताहिक अख़बार *चौथी दुनिया* पढ़ कर बहुत बढ़िया लगा. बोफोर्स एवं मनमोहन सरकार के निर्माण के अनछुए पहलू समझे. आप के अख़बार से मिली यह जानकारी नई पीढ़ी के लिए रोचक और लाभदायक है. आपसे विनम्र निवेदन है कि *चौथी दुनिया* के पुराने इतिहास से परिचित कराएं.

आपका
कुलदीप सिंह

आदरणीय संपादक जी,

आपका साप्ताहिक अख़बार *चौथी दुनिया* पढ़ कर बहुत प्रसन्नता हुई. इसके हरेक आलेख से एक नई जानकारी मिलती है. अख़बार के सभी पन्ने बहुत अच्छे और रंग-विन्यि हैं, जो दूसरे अख़बारों से अलग हैं. आपसे विनम्र गुज़ारिश है कि युवाओं का कोई ख़ास पन्ना हो, जहां युवा पाठकों के विचारों को ख़ास जगह मिले. आज के युवा वर्ग से जुड़ी मजेदार और रोचक बातें भी उस पन्ने पर शामिल हों. वैसे कुल मिला कर अख़बार का हर पन्ना अपने आप में पूर्ण है. विविध और खिलाड़ी दुनिया ख़ास अच्छे लगे.

आपकी
निधि
महरौली

आदरणीय संपादक महोदय,

आपका साप्ताहिक अख़बार *चौथी दुनिया* मैंने देखा. वैसे तो अख़बार का रंग-रूप सही लगा, पर मेरा मानना है कि अख़बार में रंगों का कुछ अधिक ही इस्तेमाल हो रहा है, जिससे अख़बार अनाकर्षक लगने लगता है. ऐसा लगता है कि रंग के इस्तेमाल के लिए ही अख़बार निकाल रहे हों. जबकि हल्के रंगों से भी अख़बार को सादगी के साथ विशेष बनाया जा सकता है. आशा है कि आगे भी जोश और सच्चाई के साथ अख़बार निकालते रहेंगे.

आपका
नागेश्वर सिंह
नोएडा सेक्टर-11

जब तोप मुकाबिल हो

आडवाणी जी अपना मखौल मत उड़वाइए

देश में राजनीतिक नेता का जन्म काफ़ी संघर्ष के बाद होता है. ऐसा नेता, जिसका नाम देश में सभी जानें, जिसके नाम पर भीड़ हो, जिसकी बात पर लोग विश्वास करें, जिसे अनदेखा न करें. इसलिए किसी भी ऐसे व्यक्तित्व पर टिप्पणी करने से बचना चाहिए. लेकिन क्या करें, आज गुस्ताख़ी करनी पड़ रही है.

पं.जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आज़ाद, लालबहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, वी पी सिंह, चंद्रशेखर और अटल विहारी वाजपेयी ऐसे नाम हैं जिन्हें देश के एक कोने से दूसरे कोने में जाना जाता है. इसी श्रेणी में लालकृष्ण आडवाणी, सोनिया गांधी और राहुल गांधी आते हैं. राहुल गांधी का नाम हम इसलिए लिख रहे हैं, क्योंकि पांच सालों में उन्होंने देश में घूम कर अपने नाम को हर जगह पहुंचा दिया है. लालकृष्ण आडवाणी भाजपा के सर्वोच्च नेता हैं और अभी कुछ वर्ष पहले तक उन्हें अटल विहारी वाजपेयी के साथ हमेशा तस्वीर में देखा जाता रहा है. चुनाव के समय या सामान्य समय की पिछले बीस वर्षों में हमें कोई ऐसी तस्वीर याद नहीं जिसमें अटल जी के साथ आडवाणी जी की तस्वीर न रही हो. दो हज़ार चार के चुनाव को ही लें, हर जगह अटल जी व आडवाणी जी की तस्वीर दिखाई देती थी. फिर आया आडवाणी जी को भावी प्रधानमंत्री बताने वाला भाजपा का बयान. और पिछले तीन सालों में, तथा इस बार के चुनाव में आडवाणी जी अकेले और अटल जी गायब. शायद भाजपा के लोग भूल गए कि अटल जी अभी ज़िंदा हैं और देश के उस वर्ग पर, जो भाजपा का समर्थक करता है, असर रखते हैं, उनके मन में ख़ास जगह रखते हैं. इन चुनावों में न अटल जी की तस्वीर, न उनकी अपील, न उनका हाथ जोड़े मुस्कुराता चेहरा, इसने भाजपा कार्यकर्ताओं को बहुत निराश किया. भाजपा की इस बेरुख़ी को कार्यकर्ताओं ने आडवाणी जी की चूक और बेरुख़ी माना. उनमें से किसी ने दिल से आडवाणी के लिए काम नहीं किया जो अटल जी को अपना नेता मानते हैं, क्योंकि उन्हें यह अटल जी का अपमान लगा.

आडवाणी जी से असहमत हुआ जा सकता था, पर कुछ दिन पहले तक उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता था. उनके कट्टर विरोधियों को भी लगता था कि वह जो कहते हैं उसे जांचना-परखना चाहिए, क्योंकि उसे आडवाणी जी कह रहे हैं. उन्होंने पिछले आठ महीनों में ऐसा व्यवहार किया, मानो वह भारत के भावी नहीं बल्कि जीते प्रधानमंत्री हों, बस शपथ लेने की देर है. दुनिया के हर हिस्से में उन्हें प्रधानमंत्री बताने वाले चित्र, उनके वक्तव्य इस बहुतायत के साथ कि वह तो प्रधानमंत्री बनेंगे ही. यह असर भारत की जनता पर डालिए क्योंकि उसे वोट डालना है, पर पाकिस्तान की जनता पर क्यों असर डाला जाए? अमेरिका सहित दुनिया के अधिकांश देशों की जनता पर क्यों असर डालने की कोशिश की गई? पाकिस्तान के हर अख़बार की वेबसाइट पर प्रमुखता से आडवाणी जी की फोटो और भारत के बनने वाले प्रधानमंत्री का प्रचार, आख़िर कैसी रणनीति का हिस्सा था. क्या आडवाणी जी ने एक प्रतिशत भी नहीं सोचा कि यदि जनता ने उनके पक्ष में फैसला नहीं दिया और वह प्रधानमंत्री नहीं बन पाए तो उनका सारी दुनिया में कितना मज़ाक़ बनेगा, उनका मखौल उड़ाया जाएगा. उनकी उपस्थिति में उन्हें आदरणीय भावी प्रधानमंत्री जी कह कर संबोधित किया जाता था, और वह उसे मुस्कुराकर सुनते थे, मना नहीं करते थे. अब क्या कहेंगे, भारत के प्रधानमंत्री पद के ठुकराए आदरणीय नेता? अपने को मज़ाक़ बनवा दिया.

लालकृष्ण आडवाणी भाजपा के सर्वोच्च नेता हैं और अभी कुछ वर्ष पहले तक उन्हें अटल बिहारी वाजपेयी के साथ हमेशा तस्वीर में देखा जाता रहा है. चुनाव के समय या सामान्य समय की पिछले बीस वर्षों में हमें कोई ऐसी तस्वीर याद नहीं जिसमें अटल जी के साथ आडवाणी जी की तस्वीर न रही हो. दो हज़ार चार के चुनाव को ही लें, हर जगह अटल जी व आडवाणी जी की तस्वीर दिखाई देती थी. फिर आया आडवाणी जी को भावी प्रधानमंत्री बताने वाला भाजपा का बयान.

क्या आडवाणी जी ने एक प्रतिशत भी नहीं सोचा कि यदि जनता ने उनके पक्ष में फैसला नहीं दिया और वह प्रधानमंत्री नहीं बन पाए तो उनका सारी दुनिया में कितना मज़ाक़ बनेगा, उनका मखौल उड़ाया जाएगा. उनकी उपस्थिति में उन्हें आदरणीय भावी प्रधानमंत्री जी कह कर संबोधित किया जाता था, और वह उसे मुस्कुराकर सुनते थे, मना नहीं करते थे. अब क्या कहेंगे, भारत के प्रधानमंत्री पद के ठुकराए आदरणीय नेता? अपने को मज़ाक़ बनवा दिया.

अपने राजनैतिक जीवन के आख़िरी वक़्त में आडवाणी जी ने अपने सलाहकारों को क्यों यह अनुमति दी कि वह उनका ऐसा घमंड भरा रूप सामने लाएं, जो ईश्वर को भी मंज़ूर न हो. आडवाणी जी को एक कथा याद कराते हैं. नारद जी स्वयंवर में जाने के लिए विष्णु भगवान से वरदान मांगने गए कि उन्हें सबसे सुंदर चेहरा मिल जाए. वह स्वयंवर लक्ष्मी जी का था. और वह सुंदर चेहरे के बल पर लक्ष्मी जी से शादी करना चाहते थे. हिंदुओं में लक्ष्मी धन और संपदा की देवी मानी जाती हैं. विष्णु भगवान ने उन्हें चेहरा दे दिया. स्वयंवर में लक्ष्मी जी आती थीं और आगे चली जाती थीं, नारद उनके आगे बार-बार आते थे. लक्ष्मी जी ने चिढ़कर कहा कि मेरे सामने आने से पहले अपना चेहरा तो देख लो. नारद ने चेहरा देखा, तो वह चेहरा बंदर का था. विष्णु ने नारद का घमंड तोड़ने के लिए यह काम किया था. आडवाणी जी का प्रधानमंत्री के रूप में इतना प्रचार और चुनाव में इतनी बुरी हार, न बड़ी पार्टी बना पाए भाजपा को और न गठबंधन को सीटें दिला पाए. अगर दस या पंद्रह का अंतर होता तो भी इज़्ज़त रह जाती.

इसके बावजूद आडवाणी बड़े नेता थे, उनकी साख थी, लेकिन यह साख उन्होंने 18 मई को समाप्त कर ली. 16 को उन्होंने कहा कि वह राजनीति से संन्यास ले लेंगे, वह नेता विपक्ष भी नहीं बनेंगे. लोगों ने इसे बड़े नेता का शानदार वक्तव्य मान उन्हें गरिमापूर्ण विदाई देने का मन बना लिया. पर वह तो दो दिन भी अपने वचन पर नहीं टिक पाए. 18 मई को उन्होंने लोकसभा में विपक्ष का नेता बनना स्वीकार कर लिया. इसके साथ ही वह ऐसे लोगों की लाइन में शामिल हो गए जो अपनी कही बात पर टिकते नहीं, पलट जाते हैं, जिनकी कथनी और करनी एक नहीं होती. लाल बहादुर शास्त्री ने एक दुर्घटना पर अपना त्यागपत्र दे दिया था, देश ने उन्हें बाद में प्रधानमंत्री बनाया. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने त्यागपत्र की बात कह त्यागपत्र दे दिया, देश ने उन्हें भी प्रधानमंत्री बनाया. पर आडवाणी जी ने अपनी घोषणा का सम्मान न रख देश के सामने किस तरह का उदाहरण रखा है, यह वह ही अच्छी तरह समझ सकते हैं. लेकिन वह उन नेताओं की श्रेणी से अलग हो गए हैं जो कथनी और करनी में भेद नहीं करते. संन्यास की बात उन्हें कहनी ही नहीं चाहिए थी, और अब लोगों को लगता है कि उन्हें प्रधानमंत्री न बनाने का कोई मलाल नहीं रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा प्रधानमंत्री नहीं चाहिए जो कहे कुछ और करे कुछ. आडवाणी जी से ज़्यादा ऊंचे तो सोनिया गांधी और राहुल गांधी नज़र आते हैं. दोनों ने घोषणा की कि वे प्रधानमंत्री नहीं बनेंगे और वे प्रधानमंत्री नहीं बने. पिछली बार भी सोनिया गांधी के प्रधानमंत्री बनने में कोई अड़चन नहीं थी और इस बार राहुल गांधी के प्रधानमंत्री बनने में कोई रुकावट नहीं है. कांग्रेस के भीतर दबाव है कि राहुल प्रधानमंत्री बनें लेकिन वे अपनी बात पर कायम हैं. हमें कहते संकोच नहीं हो रहा है कि आज सोनिया गांधी और राहुल गांधी ने अपना कद आडवाणी से बड़ा बना लिया है और वे सत्तालोलुप नहीं हैं, यह दिखा दिया है. आडवाणी जी, राहुल गांधी की तरह अपने वचन का पालन कर भाजपा को नई साख बनाने का अवसर दीजिए, क्योंकि भाजपा को अभी ऐसे नेता बनाने हैं जो राज्यसभा की नहीं लोकसभा की राजनीति करें अर्थात जनता के बीच साख पैदा करने की कोशिश करें. एक सक्षम, सार्थक और साख वाले विपक्ष की देश को ज़रूरत है और उसके लिए नेता भी वैसा चाहिए, जो जैसी घोषणा करे, वैसा ही अमल भी करे. फैसला सिर्फ़ आपको, और आपको ही लेना है, आडवाणी जी. उनके जाल में मत फंसिए जिन्होंने आपको सारे देश में हंसी का पात्र बना दिया है, क्योंकि ऐसे सलाहकार आपकी रही सही इज़्ज़त भी नीलाम कर देंगे. अपने रहते आप देखिए कि भाजपा में नया नेतृत्व विकसित हो जो देश की बुनियादी समस्याओं की चिंता करे, भावनात्मक उबाल लाने का अवांछनीय काम नहीं. आपके लंबे राजनीतिक जीवन की हम इज़्ज़त करते हैं, उसे नीलाम मत होने दीजिए

आडवाणी जी.

संपादक

editor.chauthiduniya@gmail.com

भाजपा को चाल, चरित्र और चेहरा बदलना होगा

राजनीति में चीज़ों को दिल पर नहीं लेना चाहिए. चुनाव में हार-जीत लगी रहती है. भाजपा के ख़िलाफ़ जनता ने जनादेश दे दिया है. अचरज की बात है कि भाजपा के सबसे बड़े नेता ही अपनी हार नहीं पचा पा रहे हैं. वैसे भारतीय जनता पार्टी एक बार फिर उसी मोड़ पर खड़ी है, जहां वह पांच वर्ष पहले थी. उस वक़्त भी भाजपा नेतागणों को लग रहा था कि वे आसानी से चुनाव जीत जाएंगे. जनता ने 2004 में *इंडिया शाइनिंग* को नकार दिया. भाजपा ने पराजय से सबक़ नहीं सीखा. इस बार भी वही ग़लतियां हुईं जो पिछली बार हुई थीं. जनता के संकेतों को समझ नहीं पाने से इस बार भी अपनी ख़ामियों को दूर नहीं कर सके. भाजपा के रणनीतिकार यह समझ ही नहीं सके कि जनता उन्हें वोट देती है जिन्हें अपना समझती है.

अगर कोई सोच ले कि टेलीविजन और अख़बार के जरिए चुनाव जीता जा सकता है और राजनीतिक दलों को ज़मीनी कार्यकर्ताओं की ज़रूरत नहीं है तो परिणाम यही होगा जो भाज

बिहार को मिला क़द्दावर नेता

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

पावस नीर

पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव के परिणामों ने बिहार में नीतीश राज की जड़ें और मज़बूत कर दी हैं. यह ठीक है कि राज्य की राजनीति के दो सबसे बड़े क्षत्रप रामविलास पासवान और लालू प्रसाद यादव, नीतीश के सामने बौने साबित हुए, तो कांग्रेस और राज्य की सत्ता में जेडी–यू की साझीदार भाजपा भी टिक नहीं पा रही है. लेकिन यहीं पर बिहार की राजनीति में नीतीश के एकाधिकार का ख़तरा भी सामने नज़र आता है. हालांकि इस ख़तरे को कुछ नेता नकारते भी नज़र आ रहे हैं. वहीं कुछ नेताओं ने नीतीश के ख़िलाफ़ खड़े होने का दम भी दिखाया है. ऐसे सबसे बड़े नेता हैं बांका से जीते दिग्विजय सिंह, जिन्होंने न केवल विरोध की ताक़त दिखाई, बल्कि ख़ुद को सही भी साबित किया. कभी जद–यू के दिग्गज नेताओं में शुमार रहे दिग्विजय ने नीतीश की आंधी को बांका में उलट कर सबको हैरत में डाल दिया है. बांका से पार्टी का टिकट नहीं मिलने के बाद अपनी राज्यसभा सदस्यता छोड़ जब वह मैदान में उतरे, तो चुनाव विश्लेषकों को दिग्विजय का यह क़दम आत्मघाती लग रहा था, लेकिन अपनी जीत से उन्होंने यह साबित कर दिया कि वह राजनीति के बड़े माहिर खिलाड़ी हैं. बांका का चुनाव नीतीश कुमार के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न था. यहां से उन्हीं की पार्टी के बाग़ी उम्मीदवार दिग्विजय सिंह चुनावी मैदान में थे. दिग्विजय सिंह को हराने के लिए नीतीश कुमार ने एड़ी–चोटी का ज़ोर लगा दिया. उनकी पार्टी की ओर से हेलीकॉप्टर द्वारा 50 से अधिक चुनावी सभाएं केवल बांका लोकसभा क्षेत्र में की गईं. यहां दिग्विजय सिंह का मुक़ाबला केंद्रीय जल संसाधन राज्य मंत्री जयप्रकाश यादव और बिहार के समाज कल्याण मंत्री दामोदर रावत के साथ था. नीतीश कुमार ने मतदाताओं को तीर के पक्ष में गोलबंद करने का प्रयास किया, लेकिन लगता है कि दांव खाली ही चला गया. यहां पर अतिपिछड़ी जातियों की गोलबंदी तो जद–यू के पक्ष में हुई, पर मुस्लिम, राजपूत, ब्राह्मण व अन्य मतदाता दिग्विजय सिंह के पक्ष में गोलबंद होकर नगाड़ा बजा रहे थे. वहीं यादव व कुछ मुस्लिम मतदाता जयप्रकाश के पक्ष में भी गोलबंद थे.

विपरीत परिस्थितियों में उनकी जीत ने राज्य की राजनीति में कई नए समीकरणों को जगह दे दी है. पिछले कुछ वर्षों में बिहार और देश की राजनीति में नीतीश के बढ़ते कद ने जद–यू के अंदर के समीकरणों पर काफी असर डाला. यह नीतीश का ही असर माना जा रहा था कि पंद्रहवीं लोकसभा के लिए हो रहे चुनाव में दल के सबसे वरिष्ठ नेताओं जार्ज फर्नांडिस और दिग्विजय सिंह का टिकट ही काट दिया गया. इस उपेक्षा से दुखी होकर ही इन दोनों ने क्रमशः मुज़फ्फरपुर और बांका से लड़ने का फ़ैसला किया.

आश्चर्य की बात है कि जहां 2004 में मुज़फ्फरपुर से जीत चुके जार्ज बुरी तरह से पराजित हुए, वहीं दिग्विजय सिंह ने बांका में जीत दर्ज कर ली. इस जीत से यह तो साबित हो ही गया है कि दिग्विजय सिंह अभी भी बिहार के राजनीतिक मानचित्र पर एक कद्दावर शख्सियत हैं, साथ ही उनके राजनीतिक जीवन के एक नए युग का आरंभ भी हो गया है. दिग्विजय सिंह सालों से जनता से जुड़े नेता रहे हैं और जनता के बीच उनकी अच्छी बेदाग़ छवि रही है. इसी छवि के भरोसे वह अपनी राज्यसभा की सदस्यता को छोड़ बांका में उतरे. सरकारी मशीनरी के ज़बरदस्त दबाव और चारों तरफ से घिरे होने के बावजूद उनका जीतना इस भरोसे की ही पुष्टि करता है. साथ ही उनकी जीत नीतीश कुमार और उनके आगे–पीछे लगे रहने वाले जद–यू नेताओं के लिए संकेत भी हैं कि पुराने और जनता के बीच लोकप्रिय नेताओं की अनदेखी आज नहीं तो कल पार्टी पर भारी पड़ सकती है. 2005 में नीतीश की जीत के बाद से ही जद–यू में पुराने नेताओं को हाशिए पर डालने का खेल चल रहा था. पार्टी अध्यक्ष के पद पर जार्ज फर्नांडिस की जगह शरद यादव की नियुक्ति और फिर जार्ज और दिग्विजय का टिकट कटना इसी खेल का हिस्सा था. जार्ज की बीमारी और दिग्विजय सिंह के राज्यसभा में होने का बहाना बनाकर यह फ़ैसला किया गया. चुनाव के दौरान नीतीश ही जद–यू के नेता नज़र आए. ऐसे में बांका में हार से उनके अति–आत्मविश्वास को सीधा धक्का लगा है. दिग्विजय सिंह की जीत से अब नीतीश को अहसास हो गया होगा कि बिहार में वह एकमात्र जिताऊ नेता नहीं हैं.

इसके अलावा दिग्विजय सिंह की जीत ने उनको भी एक नई उम्मीद दी है जो नीतीश कुमार के विकल्प की तलाश में जुटे हैं. दिग्विजय सिंह पुराने नेता हैं, मंत्री भी रह चुके हैं, बिहार की राजनीति में उनकी बड़ी हैसियत है और लगभग सभी दलों के नेताओं के साथ उनके अच्छे संबंध हैं. उनकी यही स्वीकार्यता अब उन्हें नीतीश के मुक़ाबले खड़ा करती है. जिस तरह से रामविलास और लालू यादव हारे हैं, फिलहाल उनसे नीतीश के ख़िलाफ़ खड़ा होने की उम्मीद नहीं की जा सकती. ऐसे में दिग्विजय ही नीतीश के ख़िलाफ़ कमान संभाल सकते हैं.

उधर राज्य में सबसे बड़े विपक्ष के तौर पर उभरी कांग्रेस भी दिग्विजय सिंह के हर क़दम पर ध्यान दे रही होगी. दरअसल लोकसभा चुनाव में अपनी सफलता से फूली नहीं समा रही कांग्रेस को एक डर सता रहा है. कांग्रेस के पास इस जन समर्थन को सही दिशा देने वाला कोई भी बड़ा नेता नहीं है. ऐसे में अगर दिग्विजय सिंह जैसे कद्दावर नेता का साथ उसे मिलता है तो बिहार में उसके फिर से एक बड़ी पार्टी के रूप में उभरने में नई गति मिल जाएगी. कांग्रेस के पास बिहार में फिलहाल वोट तो हैं लेकिन कोई करिश्माई नेता नहीं है. कांग्रेस के लिए ज़रूरी है कि वह किसी ऐसे नेता को सामने लाए जो नेतृत्व का माद्दा रखने के साथ–साथ अन्य बिहारी राजनेताओं से अलग छवि रखता हो. दिग्विजय सिंह जाने–माने नेता हैं, टीवी और अख़बारों में अक्सर नज़र आते हैं, जनता के बीच भी उनकी छवि एक अच्छे वक्ता और विचारवान नेता की है. उनकी इसी छवि को भुनाने की कोशिश कांग्रेस ज़रूर करना चाहेगी. दिग्विजय सिंह की जीत के कई मायने वक़्त के साथ सामने आएंगे, लेकिन इतना तो तय है कि उनकी यह जीत बिहार में लोकतंत्र के लिए भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि इस जीत ने लालू और पासवान की हार के बाद बन रही विपक्षशून्यता की स्थिति को ख़त्म किया है और बिना विपक्ष के लोकतंत्र की सफलता बेमायनी हो जाती है.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

इस बार जनता ने ठगा मीडिया को

हमारा स्वनामधन्य मीडिया जब भी जनता और राजनीति की बात करता है तो एक बात बार–बार दुहराई जाती है. वह यह कि पब्लिक सब जानती है. इस चुनाव के समय भी यह बात कई बार सुनने को मिली. साथ ही यह भी दावा बार–बार सुनने को मिला कि हमारे मीडिया के दिग्गज, हमारे आंकड़ों के पंडित भी जनता की हर बात को समझ रहे हैं. तभी तो उन्होंने चुनाव के नतीजों के पूर्वानुमानों की झड़ी लगा दी. हर अख़बार, हर टीवी चैनल ने जनता के मन को पढ़ लेने के दावे किए, लेकिन जब पिटारा खुला तो साफ हो गया कि पब्लिक भले सब जानती हो, लेकिन पब्लिक को जानने के सारे दावे खोखले ही हैं. हमेशा मीडिया जनता को ठगता था, इस बार जनता ने मीडिया को ठग दिया.

16 मई को देश की जनता ने अपना फैसला सुना दिया. जनादेश कांग्रेसनीत गठबंधन के पक्ष में गया है. देश की जनता ने सारे पंडितों और राजनीतिक विश्लेषकों को अपने फैसले से पटखनी दे दी. सारे गणित, सारा विश्लेषण धरा का धरा रह गया और जनता ने एक बार फिर से यह साबित कर दिया कि असली बादशाह तो वही है. चुनाव के नतीजों से कई जगह मायूसी है तो कुछ जगह पर जश्न का माहौल है. हमारे मीडिया के दिग्गज भी चारों खाने चित पड़े हुए हैं. हमने बार–बार यह बात दुहराई है कि सारे सर्वेक्षण एक तरह से जनता के दिमाग़ को पढ़ने में नाकाम होते आ रहे हैं. इस बार भी जनता ने यही बात साबित कर दी है. इन सर्वेक्षणों की पूरी कार्यप्रणाली और जनमानस को पढ़ पाने की उनकी अक्षमता पर पहले भी बात कर चुके हैं. पंद्रहवीं लोकसभा के नतीजे भी इसी अक्षमता को बयान करते हैं. चुनाव से पहले लगभग सभी मीडिया घरानों अपने–अपने सर्वेक्षणों से अगली लोकसभा की संभावित तस्वीर पेश करने का दावा किया था. ग़ौर करें तो इन अलग–अलग सर्वेक्षणों में कमोबेश एक जैसी ही तस्वीर उभर कर आ रही थी. मात्र कुछ सीटों का अंतर भर था. एक त्रिशंकु लोकसभा की भविष्यवाणी करने में ये सभी एकमत थे. जब परिणाम आए तो ये सारी भविष्यवाणियां ग़लत साबित हुईं. नतीजों का पूर्वानुमान लगाने में कई बार ग़लती कर चुके ये दिग्गज इस बार भी ग़लत रहे. जब परिणाम आए तो इन सर्वेक्षणों पर फिर से कई सवाल खड़े कर गए. सवाल फिर से यही उठता है कि आख़िर इन सर्वेक्षणों की प्रणाली क्या है? आप महज कुछ हज़ार लोगों से बात करके कैसे पूरे देश का दिमाग़ पढ़ने का दावा कर सकते हैं? न केवल उनके सर्वेक्षण सच्चाई से काफी दूर रहे, यूपी और बिहार जैसे राज्यों में उनके अनुमान भी बिल्कुल उलट गए. इन पूर्वानुमानों और परिणामों के बीच क्या फासला रहा, ये हमारी नहीं आंकड़ों की नज़र से ही देख लीजिए.

सर्वेक्षण	यूपीए	एनडीए	तीसरा मोर्चा	चौथा मोर्चा
सीएनएन–				
आईबीएन	195	177	120	85(अन्य भी)
स्टार न्यूज़	202	198	100	36
इंडिया टीवी	195	189	113	32
टीओआई	198	183	82	65
न्यूज़ 24	218	194	101	32
न्यूज़ एक्स	199	191	104	48
टाइम्स नाउ	198	183	–	162(बाकी सभी)
एनडीटीवी	216	177	105	45
औसत	202	186	104	38
नतीजे				
परिणाम	262	158	68	27(30 अन्य)

साफ है, अंतर बहुत बड़ा है. हद तो तब हो गई जब इस परिणाम पर भी कुछ चैनलों ने यह दावा करना शुरू कर दिया कि उनके अनुमान बिल्कुल सही साबित हुए हैं. यह बेशर्मी की इंतहा है. उनका कहना था कि अनुमानों में कुछ प्रतिशत का फेरबदल तो होता ही रहता है, वैसे उनका सर्वेक्षण हक़ीक़तन कुछ चालीस–पचास सीट दूर रह गया. इनका मामूली फेरबदल का दावा भी चित नज़र आता है. जिस कांग्रेस के पक्ष में वे एक–दो फीसदी वोट स्विंग का दावा कर रहे थे उसने सात प्रतिशत का स्विंग लिया. अब यह भी मामूली फेरबदल ही कहलाएगा क्या? ख़ैर जन्नत की हक़ीक़त हमें मालूम है, सो जो दिल बहलाने में लगे हैं, उन्हें उनके दावों के साथ छोड़ देना ही बेहतर होगा. हालांकि मीडिया अगर चुनाव विश्लेषणों के बाद अपना विश्लेषण करने की जहमत उठाए तो पाएगी कि एक्ज़िट पोलों के एक्ज़िट का सही वक़्त आ गया है. जनता ने जिस तरह इस चुनाव में कई दलों को बाहर का रास्ता दिखाया, उसी तरह जल्द ही वह कई मीडया संस्थानों की दुकान भी बंद कर देगी, इसमें संदेह नहीं.

अखिलेश पाठक

feedback.chauthiduniya@gmail.com

झारखंड में मुद्दों के बजाय व्यक्ति पर लगी मुहर

चुनाव परिणामों के बाद मीडिया को अपनी पीठ ख़ुद खुजाने या शर्मिंदगी को छिपाने के लिए नए बहानों की तलाश रहती है. अब राज्यवार विश्लेषण होंगे, उन पर तरह–तरह की टिप्पणियां आएंगी. रोचक समीकरणों और उलटफेरों की तलाश में लगे मीडिया को झारखंड के लोकसभा परिणामों में शायद सबसे बड़ी बात यही नज़र आए कि यहां से राज्य के सभी पूर्व मुख्यमंत्री लोकसभा के चुनाव जीत गए हैं. यहां से राज्य के चारों पूर्व मुख्यमंत्री बाबूलाल मरांडी, अर्जुन मुंडा, मधु कोड़ा और शिबू सोरेन चुनाव में सफल रहे. यह अजीब बात है कि देश के सबसे युवा राज्य की कमान संभाल चुके इन नेताओं में से एक भी राज्य की स्तर की राजनीति में जमे रहने का भरोसा नहीं दिखाया. इन परिणामों पर ध्यान दें तो इसकी वजह भी समझी जा सकती है. दरअसल झारखंड के परिणामों में कोई तयशुदा लहर नहीं नज़र आई. स्थानीय मुद्दों ने जीत–हार के समीकरण तय किए. हालांकि इन चुनाव परिणामों से इतना तो साफ हो ही गया है कि राज्य की जनता ने यूपीए की आपसी सिरफुटौव्वल के ख़िलाफ़ फ़ैसला दिया है. इसके साथ ही इन परिणामों ने जल्द ही संभव विधानसभा चुनावों के लिए ज़मीन भी तैयार कर दी है. दरअसल पिछले पांच सालों में झारखंड में कोई भी सरकार आपसी लड़ाई से अछूती नहीं रही है. चुनाव परिणाम इसी आपसी लड़ाई से तंग आई जनता का फ़ैसला है. झारखंड की जनता तीखे फ़ैसले देती है. 2004 के लोकसभा चुनाव में उसने उस सरकार के ख़िलाफ़ वोट किया था जो झारखंड राज्य बनाने का श्रेय लेती थी. राज्य के पहले मुख्यमंत्री रहे बाबूलाल मरांडी को छोड़कर एनडीए का एक भी उम्मीदवार नहीं जीत पाया था. यह हार केंद्र की नीतियों और भाजपा की अंदरूनी लड़ाई का परिणाम थी. इस बार भी मामला कुछ ऐसा ही है. इसके बाद हुए विधानसभा चुनाव में मुक़ाबला लगभग बराबरी पर छूटा. इसके बाद से राज्य में तीन अलग–अलग व्यक्ति, चार अलग बार मुख्यमंत्री बन चुके हैं और फिलहाल वहां राष्ट्रपति का शासन है. इन पांच सालों में कभी कोई स्थायी सरकार नहीं बन पाई. पहले शिबू को मुख्यमंत्री बनाने की कोशिश हुई, फिर अर्जुन मुंडा की सरकार गिरा मधु कोड़ा देश के पहले निर्दलीय मुख्यमंत्री बने. फिर 22 जुलाई को केंद्र सरकार बचाने का ईनाम देने के लिए शिबू सोरेन को मुख्यमंत्री बनाने के लिए जो नौटंकी हुई, उससे यूपीए में फूट पड़ गई. लगता है इसी के साथ जनता के सब्र का प्याला भी छलक गया. इस बार का फ़ैसला इसी गुस्से को दिखाता है. इस बार भाजपा को उसका फ़ायदा हुआ है और वह शून्य से आठ सीटों पर पहुंच गई है. वहीं यूपीए तेरह से तीन पर आ गया. एनडीए से अलग हुए लेकिन एक–दूसरे के करीब माने जाने वाले बाबूलाल मरांडी और इंदर सिंह नामधारी भी जीत गए. संकेत साफ हैं. पिछले पांच साल से लूट–खसोट और सत्ता के खेल में जुटे बाज़ीगरों को जनता ने नकार दिया. इस चुनाव में सभी कद्दावर नेताओं की जीत ने यह भी दिखा दिया कि झारखंड राजनीति में अभी भी मुद्दे व्यक्तियों से पीछे का ही स्थान रखते हैं. साथ ही इस चुनाव ने कई पुराने धुरंधरों को भी नई सांस दी है. यह चुनाव बाबूलाल मरांडी के लिए सबसे महत्वपूर्ण थे. भाजपा से अलग होने के बाद अपनी राजनीतिक हैसियत बचाए रखने के लिए उनका यह चुनाव जीतना बेहद अहम था. हालांकि बाबूलाल को केंद्र में एनडीए की सरकार न बन पाने का अफसोस होगा. एक अल्पमत एनडीए सरकार की सूरत में वह महत्वपूर्ण होते और मंत्रीपद का दावा भी ठोक सकते थे. खैर फिलहाल उनका यह सपना अधूरा ही लगता है लेकिन उनकी जीत ने राज्य में उनके कद में इजाफा ही किया है और अब विधानसभा चुनाव में वह बेहतर स्थिति में दिखेंगे और भाजपा में उनकी वापसी की सूरत में भी उनका रुतबा बड़ा ही रहेगा. चारों पूर्व मुख्यमंत्रियों के अलावा मंत्री सुबोधकांत सहाय, झारखंड विधानसभा के पहले अध्यक्ष रहे नामधारी और पूर्व केंद्रीय मंत्री यशवंत सिंहा और कड़िया मुंडा भी जीतने वालों में रहे. यह नतीजा इस ओर भी संकेत करता है कि झारखंड में इन पांच सालों में उभरे नए नेताओं पर जनता का कोई भरोसा नहीं है. परिणामों पर एक बड़ा अंतर मतदाताओं के ध्रुवीकरण से भी आया है. जहां पिछली बार सदान विकास परिषद ने अपने उम्मीदवार खड़े कर भाजपा के वोटों में सेंधमारी की थी, वहीं इस बार आदिवासी छात्र संघ और झारखंड पार्टी जैसे संगठनों ने यूपीए के आदिवासी वोट बैंक को बांट कर रख दिया. लोहरदगा और खूंटी जैसे इलाक़ों में यही प्रभाव यूपीए की हार का कारण बना. झारखंड के आदिवासियों का प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले नेताओं से लोगों का मोहभंग हुआ है जिसका ख़ामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा. सबसे ज़्यादा नुकसान गुरुजी यानी शिबू सोरेन को हुआ. मुख्यमंत्री की बनने की होड़ से यूपीए के घटक तो अलग हुए ही कुछ अपने लोग भी ख़िलाफ़ हो गए. साफ है कि झारखंड के चुनाव परिणामों में राष्ट्रीय मुद्दों पर स्थानीय कारण भारी रहे. अब देखना यह है कि जनता के इस फैसले के बाद भी राज्य की राजनीति में कोई बदलाव आता है या नहीं. दिलचस्प यह देखना भी होगा कि आख़िरकार लोकसभा में पहुंचे चारों मुख्यमंत्री केंद्र की राजनीति में रमेंगे या फिर मौका देखते ही राज्य सरकार की कुर्सियों का रुख़ करेंगे. इन नेताओं को जनता ने भी संकेत दे दिए हैं कि जनता किसी भी ऐसी सरकार को बर्दाश्त नहीं करेगी जो विकास के मुद्दों को छोड़ कर भ्रष्टाचार और आपसी खींचतान में लगी रहे. ज़रूरी है कि राजनीतिक दल यह संकेत समझें वरना हार ही हाथ लगेगी.

बाबूलाल मरांडी

अर्जुन मुंडा

शिबू सोरेन

मधु कोड़ा

पावस नीर

pawas.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

मोदी से मोहभंग के भी मिले संकेत

रीतिका सोनाली

गुजरात पर तमाम बहसों और विचारों के हवाले से यह राय निकल कर आती रही थी कि कांग्रेस गोधरा प्रकरण से बाहर नहीं निकल पाई और उसी एस-6 डिब्बे में ही फंस कर रह गई है, जबकि मोदी इससे आगे बढ़ चुके हैं और इसका ख़ामियाजा ही अब तक कांग्रेस को भुगतना पड़ा था. कहा जाता था कि गोधरा कांड के समय कांग्रेस का असर कई नगर महापालिकाओं में था, लेकिन अपने असर वाले इलाक़ों में भी कांग्रेस दंगों को रोक नहीं सकी थी. जबकि मोदी के पक्ष में विकास का मुद्दा हावी रहा है. 1992 के बाद से राज्य ने काफी तरक्की की है, जिसका श्रेय भाजपा ने मोदी और उनकी ज्योतिग्राम योजना, ई-ग्राम योजना, चिरंजीवी योजना आदि को दिया है. लेकिन जितना काम मोदी करते हैं उससे अधिक उसका ढिंढोरा पीटते हैं, प्रचार करते हैं. पर इस दौरान किसानों की आत्महत्या और हीरा उद्योग से उपजे हज़ारों लोगों की बेरोज़गारी को परे नहीं रखा जा सकता है. इन सवालों में उलझने पर मोदी भी सभी भाजपाइयों की तरह घूम-फिर कर राम का राग अलापने लगे थे. इस बार के आम चुनाव में मोदी के ऊपर केवल गुजरात ही नहीं महाराष्ट्र और गोवा में प्रचार का भी भार था. उन्होंने लगभग दो सौ लोकसभा क्षेत्रों में सभाएं कीं, पर गुजरात के बाहर वह मात्र 18 सीटों पर ही भाजपा को जीत दिला सके. जबकि राहुल गांधी ने करीब सौ क्षेत्रों में सभाएं कीं और पार्टी को 50 सीटों पर जीत दिलाई. इस बिना पर यह कहा जा सकता है कि मोदी की थोड़ी-बहुत लोकप्रियता, जो उन्होंने अपने बड़बोलेपन के कारण अर्जित की थी, वह गुजरात में भी नहीं चल पाई है. गुजरात में भले ही कांग्रेस की एक सीट कम हुई हो, पर भाजपा भी यहां कोई चकित कर देने जीत दर्ज़ कर पाने में नाकाम रही. जहां पिछली बार के आम चुनाव में भाजपा को राज्य की कुल 26 में से 14 सीटें मिली थीं, तो इस बार राम का नाम जप रहे मोदी फैक्टर ने सिर्फ़ एक सीट बढ़ाने में मदद की. पिछली बार भाजपा को 47.37 प्रतिशत मत मिले थे, जबकि इस बार 46.52 प्रतिशत वोट ही मिले. यानी वोटिंग प्रतिशत 0.85 कम हुई है. यदि मोदी या उनके कार्यों की लोकप्रियता होती तो भाजपा के वोटिंग प्रतिशत में 0.85 का फ़र्क़ नहीं दिखता. इस बार भाजपा ने 15 और कांग्रेस ने 11 सीटों पर जीत हासिल की है. पिछली बार कांग्रेस ने राज्य के 26 में से 25 सीट पर ही प्रत्याशी खड़े किए थे, जबकि भाजपा ने सभी 26 सीटों पर. इस बार कांग्रेस ने सभी 26 सीटों पर प्रत्याशी खड़े किए थे, और 11 में उनकी जीत हुई है, पर वोटिंग प्रतिशत में कोई खास फ़र्क़ नहीं आया है. पिछली बार कांग्रेस को 43.86 प्रतिशत वोट मिले थे और इस बार भी लगभग उतना ही यानी 43.38 प्रतिशत वोट मिले. यहां जीतने वाले मुख्य उम्मीदवारों में गांधीनगर से भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी, अहमदाबाद पूर्वी से भाजपा के हरेन पाठक, पोरबंदर से विट्ठल भाई रदड़िया हैं. हारने वाले मुख्य नेताओं में केंद्रीय मंत्री दिनशा पटेल और नरेन भाई राठवा हैं. उधर, पंचमहल से केंद्रीय मंत्री शंकर सिह वाघेला को भी मुंह की खानी पड़ी. इस बार कांग्रेस की सीटें कम होने का कारण कांग्रेसियों में आपसी गुटबंदी कही जा रही है. माना जा रहा है कि शंकर सिंह वाघेला इत्यादि के गुट बन जाने की वजह से पार्टी ठीक से राज्य की स्थितियां संभाल नहीं पाई. पर पूरे देश की स्थितियों में कांग्रेस ने जिस तरह से अपनी सारी कमियों को दूर कर 19 वर्षों बाद अपना प्रभुत्व हासिल किया है, गुजरात में भी भाजपा ज़्यादा समय तक राम नाम नहीं भज सकती.

ritika.chauthiduniya@gmail.com

गुजरात में भले ही कांग्रेस की एक सीट कम हुई हो, पर भाजपा भी यहां कोई चकित कर देने जीत दर्ज़ कर पाने में नाकाम रही. जहां पिछली बार के आम चुनाव में भाजपा को राज्य की कुल 26 में से 14 सीटें मिली थीं, तो इस बार राम का नाम जप रहे मोदी फैक्टर ने सिर्फ़ एक सीट बढ़ाने में मदद की.

शंकर सिंह वाघेला

फोटो-प्रभात पाण्डेय

पत्रकारों से मुख़ातिब नरेंद्र मोदी.

क्षेत्रीयता का मसला उठाने वालों को मिली सीख

महाराष्ट्र में मुंबई पर आतंकवादी हमले, उत्तर भारतीयों का अपमान और किसानों की आत्महत्या जैसे स्थानीय मुद्दों पर कांग्रेस के कमज़ोर पड़ने की उम्मीद की जा रही थी. अनुमान यही था कि राज्य में आए संकटों की वजह से राज्य की जनता कांग्रेस के बजाय भाजपा या क्षेत्रीय पार्टियों के खेमे में जाएगी. पर जनता ने उत्तर भारतीयों को खदेड़ने की बात कह रहे राज ठाकरे और महाराष्ट्र को मराठा राज्य की संज्ञा देकर देश से अलग-थलग कर देने की मुहिम में लगे बाल ठाकरे को भी नकार दिया है. मुंबई में तो राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (एमएनएस) ने कांग्रेस के लिए मैदान ही साफ कर दिया. एमएनएस ने शिवसेना-भाजपा के वोट काट कर दोनों को अच्छा सबक दिया. उत्तर भारतीयों के मसले पर साफ रुख़ न अपनाने का नुकसान शिवसेना और उससे भी अधिक भाजपा को उठाना पड़ा. परिणाम को देखते हुए लगता है कि एमएनएस ने मराठियों के वोट काट कर जहां शिवसेना को चोट पहुंचाई, वहीं अल्पसंख्यकों के ज़्यादातर वोट राकांपा के पक्ष में चले गए. राज्य में लोकसभा की कुल 48 सीटें हैं. इनमें से शिवसेना को 11, भाजपा को नौ, कांग्रेस को 17 और राकांपा को आठ सीटें मिलीं. तीन सीटें अन्य व निर्दलीयों के खाते में गईं. शुरू में शिवसेना के बयानों से लग रहा था कि वह इस बार राज्य में कोई नया समीकरण भी तैयार कर सकती है. जब राकांपा के नेता शरद यादव से बाल ठाकरे मिले तब इस चर्चे को हवा भी मिल गई थी. पर आख़िरकार भाजपा-शिवसेना ने ही मिलकर चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया. भाजपा 26 और शिवसेना 22 सीटों पर चुनाव लड़ी. इस गठजोड़ का सीधा मुकाबला कांग्रेस-राकांपा से था. चुनाव के दौरान शिवसेना और भाजपा के बीच मराठी-ग़ैर मराठी मामले को लेकर मतभेद रहा. माना जा रहा था कि मायावती अपनी सोशल इंजीनियरिंग से विदर्भ में खेल कर सकती हैं, पर चुनाव का परिणाम देखकर यही लगा कि जनता ने भाषा, धर्म, संप्रदाय और जाति से ऊपर उठकर वोट देने का फ़ैसला किया. यही वजह है कि महाराष्ट्र में कांग्रेस को 17 सीटों पर जीत हासिल हुई, यानी पिछली बार की तुलना में कांग्रेस ने इस बार यहां चार सीटें और बढ़ा ली. हालांकि कांग्रेस की सहयोगी पार्टी-राकांपा-को पिछली बार से इस बार एक सीट का नुकसान हुआ. पश्चिम महाराष्ट्र में राकांपा को शर्मसार होना पड़ा जहां से पार्टी के बाग़ी सदाशिव राव मांडलिक बतौर निर्दलीय जीत गए. उधर, भाजपा 13 सीटों से घटकर नौ पर सिमट गई तो शिवसेना को भी एक सीट का नुकसान झेलना पड़ा.

कांग्रेस की इस जीत का श्रेय राज्य व केंद्र सरकार द्वारा किए गए कार्यों को दिया जाना चाहिए. ग्रामीण महाराष्ट्र में किसानों की क़र्ज़ माफी योजना और राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी अधिनियम (नरेगा) की सफलता से कांग्रेस-राकांपा को विदर्भ में दस में से पांच सीटें मिलीं. उधर पूर्व महाराष्ट्र के नासिक में समीर भुजबल राकांपा से और नंदूरबार में मानिकराव गवित ने कांग्रेस से जीत का परचम लहराया है. कोंकण में भी कांग्रेस को महत्वपूर्ण फ़ायदा हुआ है, राज्य के उद्योग मंत्री नारायण राणे के सुपुत्र नीलेश राणे ने नई बनी रत्नागीरी-सिंधुदुर्ग सीट को जीत लिया. इसके अलावा राकांपा से जीतने वाले मुख्य उम्मीदवारों में बारामती से शरद पवार की बेटी सुप्रिया सूले, माढा से ख़ुद शरद पवार और भंडारा-गोंदिया से प्रफुल्ल पटेल हैं. कांग्रेस से मुंबई उत्तर-मध्य से प्रिया दत्त, सोलापुर से सुशील कुमार शिंदे, रामटेक से मुकुल वासनिक, मुंबई उत्तर से संजय निरूपम, मुंबई दक्षिण से मिलिंद देवड़ा, मुंबई उत्तर दक्षिण से गुरुदास कामत ने कांग्रेस का परचम लहराया है. संजय निरूपम को जिताने के जनता के फ़ैसले से यही संकेत मिलता है कि उसने कांग्रेस को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में रखकर वोट दिया.

अशोक चव्हाण

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मणिपुर में कांग्रेस ही कांग्रेस

ख़ुशी का इज़हार करते थांगसो बाइटे और टी मैन्य.

एस. बिजेन सिंह

मणिपुर में दोनों संसदीय सीटों पर कांग्रेस का क़ब्ज़ा रहा. भीतरी मणिपुर (इनर) में डॉ. टी मैन्य और बाहरी (आउटर) में थांगसो बाइटे ने सफलता हासिल की. यह मणिपुर के इतिहास में पहली बार हुआ है कि लोकसभा की दोनों सीटों पर कांग्रेस ने अपने पांव जमाए. भीतरी (इनर) की सीट पर निवर्तमान सांसद डॉ. थोकचोम मैन्य ने अपने निकटतम प्रतिस्पर्धी सीपीआई के डॉ. नर सिंह को 30,960 वोट से परास्त किया. पूर्व केंद्रीय मंत्री एमपीपी के प्रत्याशी थौनाउजम चाउबा को 1,01,787 वोट मिले, जबकि पूर्व मुख्यमंत्री और भाजपा के प्रत्याशी डब्ल्यू निपामचा को 34,098 वोट ही मिले. निर्दलीय प्रत्याशियों में ए हमन और एन होमेंद्रो को क्रमशः 13,805 और 1,450 वोट मिले. आरबीसीपी के प्रत्याशी एल क्षेत्रानी को 1,290 वोट मिले. इनर के सफल प्रत्याशी डॉ. मैन्य को पिछले लोकसभा चुनाव में 1,54,055 वोट मिले थे, जबकि इस बार 76,821 वोट अधिक मिले. डॉ. मैन्य को सबसे ज़्यादा वोट दिलाने वाला विधानसभा क्षेत्र अंद्रो है, जहां से 16,280 वोट मिले. सबसे कम उनको शिंगजमै विधानसभा क्षेत्र से 2,626 वोट मिले. सीपीआई को सबसे ज़्यादा वोट लिलोंग विधानसभा क्षेत्र से 10,898 मिले, जबकि सबसे कम 1,618 वोट नंबोल से सीपीआई को मिले. जिला स्तर पर मतदान को देखें तो इंफाल (ईस्ट) में कांग्रेस को 79,610 वोट और सीपीआई को 69,212, इंफाल (वेस्ट) में कांग्रेस को 77,765, सीपीआई को 75,621, थौबाल जिले में कांग्रेस को 29,330 और सीपीआई को 27,845 और विष्णुपुर जिले में कांग्रेस को 44,132 और सीपीआई को 27,212 वोट मिले. बाहरी (आउटर) संसदीय सीट पर भी कांग्रेस के प्रत्याशी थांसो वाइटे ने पीडीए के प्रत्याशी और निवर्तमान सांसद मनि चरानमै को 1,19,798 से भी ज़्यादा वोट से हराया. बाइटे को कुल 3,88,517 वोट मिले, जबकि मनि चरानमै को 2,24,719 वोट मिले. आउटर में तीसरे स्थान पर बीजेपी के डी लोलि अदानि रहे, जिन्हें 93,052 मत मिले, चौथे स्थान पर एनसीपी के एलबी सोना रहे, जिनको 79,849 वोट मिले. आरजेडी के एमवाई हाउकिप को 4,859, निर्दलीय वेली रोज को 4,735, निर्दलीय एल गांते को 2,070, एलजेपी के थांखानगिन को 1,252 और निर्दलीय रोज मांसी हाउकिप को 1,128 वोट मिले. सांसद थांसो वाइटे को सबसे ज़्यादा वोट साइकुल विधानसभा क्षेत्र से मिले, जहां उनको 27,516 वोट मिले और सबसे कम यानी 850 मत माओ विधानसभा क्षेत्र से मिले. पीडीए के प्रत्याशी मनि चरानमै को सबसे ज़्यादा 22,194 वोट चिंगाई विधानसभा क्षेत्र से मिले और सबसे कम 106 वोट सुगनु विधानसभा क्षेत्र से ही मिले. इस तरह मणिपुर के सभी सांसद कांग्रेस के हो गए हैं. ग़ौरतलब है कि मणिपुर से राज्यसभा के रिशांग कैसिंग हैं, जो कांग्रेस के पुराने और बड़े नेता हैं. और, इस बार लोकसभा के लिए चुने गए दोनों सदस्यों के भी कांग्रेसी होने से राज्य में कांग्रेस का पूरा वर्चस्व हो गया है. यही कारण है कि रिशांग कैसिंग ने सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह से मांग की है कि इस बार मणिपुर से भी किसी सांसद को केंद्र में मंत्री बनाया जाए.

बहरहाल, अब इन दोनों लोकसभा सदस्यों का सर्वप्रथम कार्य यही होगा कि आतंकवादी समस्या ख़त्म हो. दोबारा सांसद बने डॉ. मैन्य ने तो जनता को यह आश्वासन भी दिया है कि उनकी प्राथमिकता प्रदेश में शांति व्यवस्था कायम करना है.

स्वागत कार्यक्रम में तीनों सांसदों के साथ राज्य के मुख्यमंत्री.

इनर मणिपुर सीट

प्रत्याशी के नाम	पार्टी	कुल वोट
डॉ थोकचोम मैन्य	आईएनसी	230876
थौनाउजम चाउबा	एमपीपी	101787
एम नर सिंह	सीपीआई	199916
डब्ल्यू निपामचा	बीजेपी	34094
एल क्षेत्रानी देवी	आरबीसीपी	1290
अब्दुल रहमान	निर्दलीय	13805
नोंगमाइथेम होमेंद्रो	निर्दलीय	1450
	कुल वोट	583226

आउटर मणिपुर सीट

थांगसो बाइटे	आईएनसी	344517
डी लोली अदानी	बीजेपी	93052
एलबी सोना	एनसीपी	79849
एमवाई हाउकिप	आरजेडी	4859
थांगखागिन	एलजेपी	1252
मनि चरानमै	पीडीए	224719
वी रोज	निर्दलीय	4735
एम रोज हाउकिप	निर्दलीय	1128
एल गांगते	निर्दलीय	2070
	कुल वोट	756181

bijen.chauthiduniya@gmail.com

केंद्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय पर ख़तरा

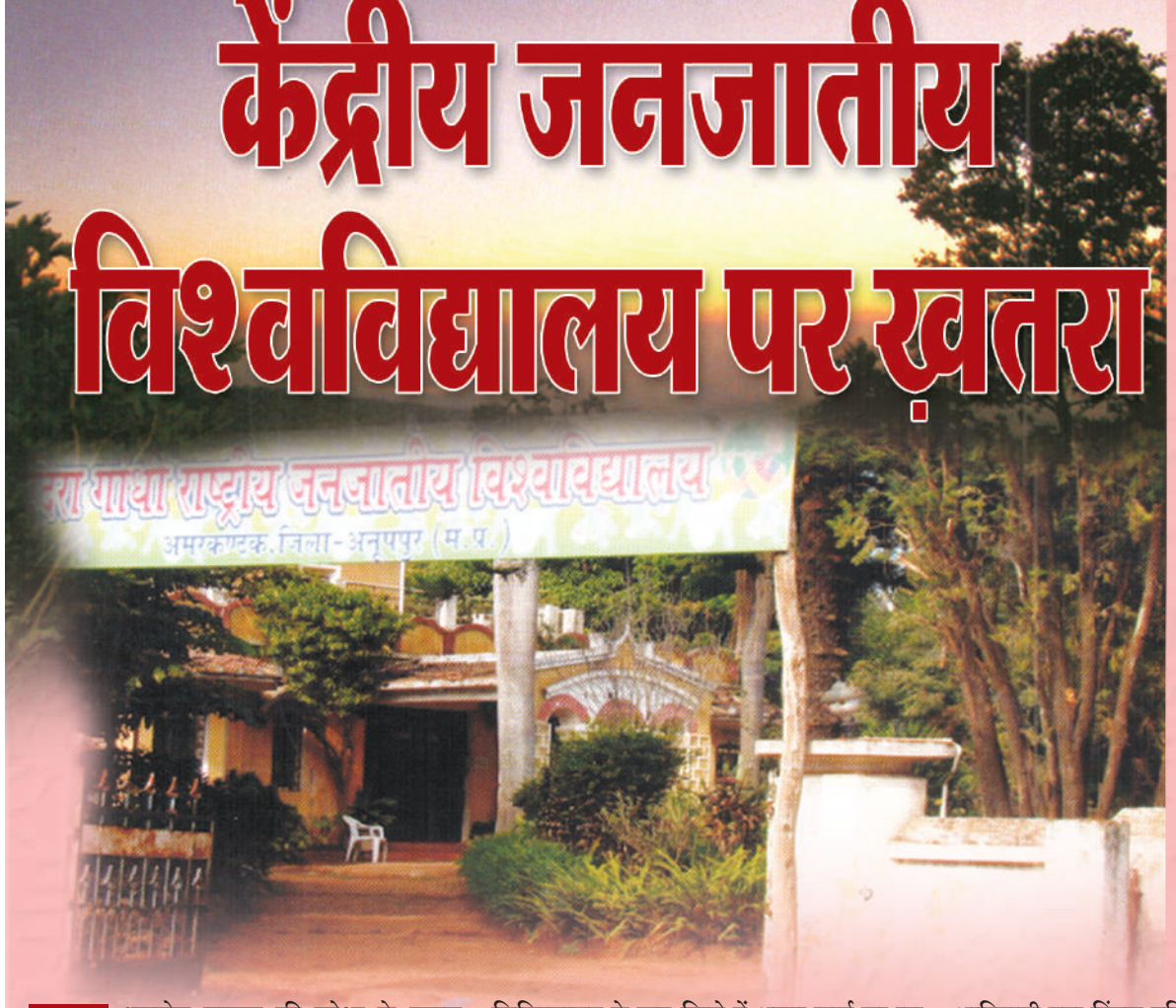

मध्यप्रदेश सरकार की उपेक्षा के कारण एशिया में पहला इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है. मध्यप्रदेश में ऊर्जा उत्पादन के लिए हज़ारों एकड़ ज़मीन आदिवासियों से अधिग्रहीत कर निजी कंपनियों को सौंप देने के लिए उदार कही जाने वाली राज्य सरकार आदिवासी शिक्षा के लिए केंद्र सरकार द्वारा बनाए जाने वाले जनजातीय विश्वविद्यालय को नितांत आदिवासी क्षेत्र में दो सौ एकड़ ज़मीन उपलब्ध करा पाने में विफल रही है. अब आशंका यह है कि उपयुक्त ज़मीन न मिल पाने के कारण यह विश्वविद्यालय कहीं किसी अन्य राज्य में न चला जाए. आदिवासी वर्ग की शिक्षा के प्रति असहयोगात्मक रवैए ने भाजपा सरकार के कथित जनकल्याणकारी इरादों की पोल खोल दी है.

मध्यप्रदेश के अनूपपुर आदिवासी जिले में नर्मदा के उद्गमस्थल अमरकंटक में विकास की धारा आजादी के इतने सालों बाद तक नहीं पहुंच सकी. पहली बार केंद्र सरकार ने संसद में एक अधिनियम पास कर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय की स्थापना को स्वीकृति प्रदान की. यह विश्वविद्यालय अति पिछड़े कहे जाने वाले आदिवासी क्षेत्र अमरकंटक में ही खोला जाना प्रस्तावित है. इसके लिए विश्वविद्यालय को राज्य सरकार से 200 एकड़ भूमि की आवश्यकता है. मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा उपरोक्त विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए 200 करोड़ रुपये की राशि भी स्वीकृत हो गई. भूमि की अनुपलब्धता और कलेक्टर से लेकर तहसीलदार तक के पदों पर बैठे स्थानीय अधिकारियों का उपेक्षापूर्ण रवैया विश्वविद्यालय के अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है. 19 अप्रैल 2008 को प्रारंभ घोषित होने के बाद से यह विश्वविद्यालय फिलहाल एक धर्मार्थ चिकित्सालय के कुछ हिस्से में अपना कार्य कर रहा है. आदिवासियों की उपेक्षा का आलम यह है कि विश्वविद्यालय को तात्कालिक जरूरतों को पूरा करने के लिए साहू समाज द्वारा दी गई धर्मशाला, जिसमें महिला छात्रावास खोला जाएगा, के पानी के कनेक्शन को नगर पंचायत ने काट दिया है. अमरकंटक क्षेत्र में यूं भी शासकीय भवनों का सर्वथा अभाव है. ऐसे में विश्वविद्यालय ने आदिवासी विकास परियोजना पुष्पराजगढ़ के एक भवन को उपयोग के योग्य बनाया था. लेकिन वहां काम शुरू होने से पहले ही राज्य सरकार ने उसका आबंटन निरस्त कर दिया.

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय के पहले उपकुलपति श्री सीडी सिंह ने कार्यभार संभालने के बाद यानी सात जुलाई 2008 से आज तक सिर्फ़ विश्वविद्यालय के प्रस्तावित नक्शे को ही तैयार करने में सफलता पाई है. विश्वविद्यालय स्थापना के प्रति राज्य शासन का रुख़ इतना नकारात्मक है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जनजातीय विषयों पर शिक्षा व शोध कार्यक्रम का संचालन करने वाले इस संस्थान की स्थापना के कार्यक्रम में भी प्रदेश के मुख्यमंत्री ने उपस्थित रहना अनिवार्य नहीं समझा. तत्कालीन जिला कलेक्टर से लेकर सबसे छोटे अधिकारी तक ने विश्वविद्यालय के उपकुलपति को इस आदिवासी शैक्षणिक आवश्यकता की पूर्ति के सिलसिले में अपने दरवाजे पर घंटों इंतजार कराया. भारतीय जनता पार्टी सरकार ने यूं भी शिक्षकों की गरिमा को हर कदम पर ठेस पहुंचाई है, जिसका प्रमाण उज्जैन में हुआ सबरवाल कांड माना जा सकता है. राज्य सरकार के आदिवासी विकास संबंधी खोखले दावे उस समय बौने साबित हो जाते हैं जब केंद्र सरकार की जनजातीय वर्ग को दी जाने वाली उच्च शिक्षा के मामले में सरकार की निष्क्रयता इस तरह खुलकर सामने आती है.

वर्तमान शिक्षण सत्र में इस विश्वविद्यालय के पास 158 छात्रों ने पंजीकरण करा शिक्षा प्राप्त करना प्रारंभ किया है. विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रमों में विज्ञान, ऊर्जा पर्यावरण आदिवासी, सामाजिक विज्ञान, इंजीनियरिंग, बिजनेस, कॉमर्स मैनेजमेंट एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग आदि विषय शामिल हैं. जनजातीय विश्वविद्यालय के प्रारूप के अनुसार 17 देशों में विश्वविद्यालय अपने केंद्रों की स्थापना करेगा. इसके अलावा असम से लेकर कर्नाटक तक 20 राज्यों में भी केंद्रों की स्थापना की जाएगी. इन राज्यों में नार्थ-ईस्ट के वे सभी राज्य शामिल हैं, जहां शिक्षा व रोजगार के पर्याप्त अवसर न मिल पाने के कारण आदिवासी युवा हिंसक गतिविधियों की ओर बढ़ रहे हैं. विश्वविद्यालय द्वारा 10 सदस्यीय एक्ज़ीक्यूटिव काउंसिल और 20 सदस्यीय एकेडमिक काउंसिल का मनोनयन किया गया है. एकेडमिक काउंसिल में देश के सभी महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों को शामिल किया गया है. अमरकंटक समुद्र की सतह से 1032 मीटर ऊपर सतपुड़ा की पहाड़ियों पर स्थित है. यह स्थान नर्मदा उद्गम स्थल के कारण विशेष धार्मिक महत्व का है. जिला मुख्यालय से इस स्थान की दूरी 70 किलोमीटर है. इस स्थान से नर्मदा, सोन और जुहिला नदियां निकलती हैं. इस स्थान पर कई अद्भुत जड़ी-बूटियों की पैदावार होती है. यहां के निवासी अपनी दैनिक ज़रूरतों के लिए वन पर भी आश्रित हैं. अमरकंटक पहुंचने पर किसी आदिकालीन शहर में पहुंचने का आभास अपने आप हो जाता है. धार्मिक मान्यताओं के अनुसार यह शहर भगवान शिव से भी संबद्ध माना जाता है. इस क्षेत्र में आदिवासियों की गौंड, बैगा, खारिया और पनिका जैसी जातियां निवास करती हैं. अमरकंटक दरअसल शहडोल, डिंडौरी, मंडला, इमरिया और अनूपपुर आदिवासी जिलों के मध्य मेकल की पहाड़ियों पर स्थित एक पूर्ण प्राकृतिक स्थान है. जनजातीय विश्वविद्यालय को भूमि आवंटित करने की प्रक्रिया में राज्य शासन की रुचि नहीं के बराबर है. अमरकंटक में हिंडाल्को द्वारा बंद की गई बॉक्साइट खदान की 200 एकड़ भूमि उपलब्ध है. उस भूखंड को जनजातीय विश्वविद्यालय के लिए मांगा गया था. अनूपपुर जिले के कलेक्टर ने उपरोक्त भूखंड आबंटन का विरोध इस आधार पर किया कि विश्वविद्यालय स्थापना से इस क्षेत्र की औषधीय वनस्पति को नुकसान पहुंचेगा. कलेक्टर महोदय इस तथ्य को स्पष्ट कर पाने में नाकाम रहे कि पांच दशक तक चलने वाली वाक्साइट खदान के कारण औषधीय वनस्पतियों को इस क्षेत्र में कितना नुकसान पहुंचा है. यह बात अलग है कि अनूपपुर जिले का पदभार सौंपने से पूर्व उन्होंने उपरोक्त हिंडाल्को की ज़मीन में से पांच एकड़ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े भोपाल के एक व्यक्ति को ज़रूर आबंटित कर दिया. विश्वविद्यालय को भूखंड न देने के दो प्रमुख कारण उभरकर सामने आते हैं. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा वनवासी सेवा आश्रम की गतिविधियां इस जनजातीय विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर समाप्त होती नजर आती है. उल्लेखनीय है कि वनवासी सेवा आश्रम संघ परिवार के निर्देश पर आदिवासी क्षेत्रों में हिंदूत्व के मुद्दे को प्रभावशाली बनाने के लिए शैक्षणिक गतिविधियों का सहारा लेता है. इसके अलावा अनूपपुर और शहडोल जिले में सक्रिय भूमाफिया, जिसने अमरकंटक से अलग हटकर आदिवासियों की ज़मीन 500 रुपए एकड़ की दर पर इसलिए खरीद रखी है कि यहां विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर इसी भूमि के अधिग्रहण के लिए लाखों रुपये में कीमत आंकी जाएगी. भूमाफिया का दबाव स्थानीय अधिकारियों व राज्य शासन पर इतना अधिक है कि अमरकंटक में खाली पड़ी हुई ज़मीन को आवंटित करने में भी सरकार के पसीने छूट रहे हैं. विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री सीडी सिंह के अनुसार छत्तीसगढ़, मिजोरम, असम, बिहार जैसे कई राज्यों से इस विश्वविद्यालय को एक हजार एकड़ ज़मीन देने का प्रस्ताव प्राप्त हो चुका है. संसद से पारित अधिनियम के अनुसार इस विश्वविद्यालय को अमरकंटक में ही स्थापित किया जाना है, इसी बाध्यता के कारण शायद निर्माण के लिए स्वीकृत की गई 200 करोड़ रुपये की राशि खर्च न कर पाने के कारण लुप्त हो गई है. आदिवासी विश्वविद्यालय का सर्वाधिक लाभ मध्यप्रदेश के 20.87 प्रतिशत आदिवासियों को मिलना तय था. इसके अलावा आदिवासी विषयों पर शोध करने के लिए विदेशों से बड़ी संख्या में लोग इस विश्वविद्यालय में आते, जिससे अमरकंटक को एक पूर्ण पर्यटन केंद्र का दर्जा मिल पाने में भी दिक्कत नहीं होती. केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने इस विश्वविद्यालय के स्थापना समारोह में कहा था कि इसकी स्थापना के साथ-साथ ही आदिवासियों के विकास का एक नया मार्ग खुल रहा है जिसमें राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर के आदिवासी युवा अपने सुनहरे भविष्य को पूरा होता हुआ पाएंगे. श्री सिंह ने आदिवासियों की समृद्धशाली विरासत के विभिन्न पहलुओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत कर लंबे समय के लिए सुरक्षित रखने की आवश्यकता पर बल दिया था.

जनजातीय विश्वविद्यालय की मध्यप्रदेश में स्थापना का स्वप्न अब धीरे-धीरे केवल स्वप्न में ही परिवर्तित हो रहा है, जिसके लिए राज्य सरकार की आदिवासी विरोधी नीति और नकारात्मक सोच पूरी तरह जिम्मेवार है. शायद यह अंतिम वर्ष है जब विश्वविद्यालय की मध्यप्रदेश में स्थापना के लिए प्रयास किए जाएंगे. इस मामले में प्रतिक्रिया जानने में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री से कई बार संपर्क करने की कोशिश की गई, पर चुनावी व्यस्तताओं के कारण आदिवासी विकास के इस मुद्दे पर बात करने के लिए वह समय नहीं निकाल पाए.

संध्या पांडे

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मेरी दुनिया.... ...धीर

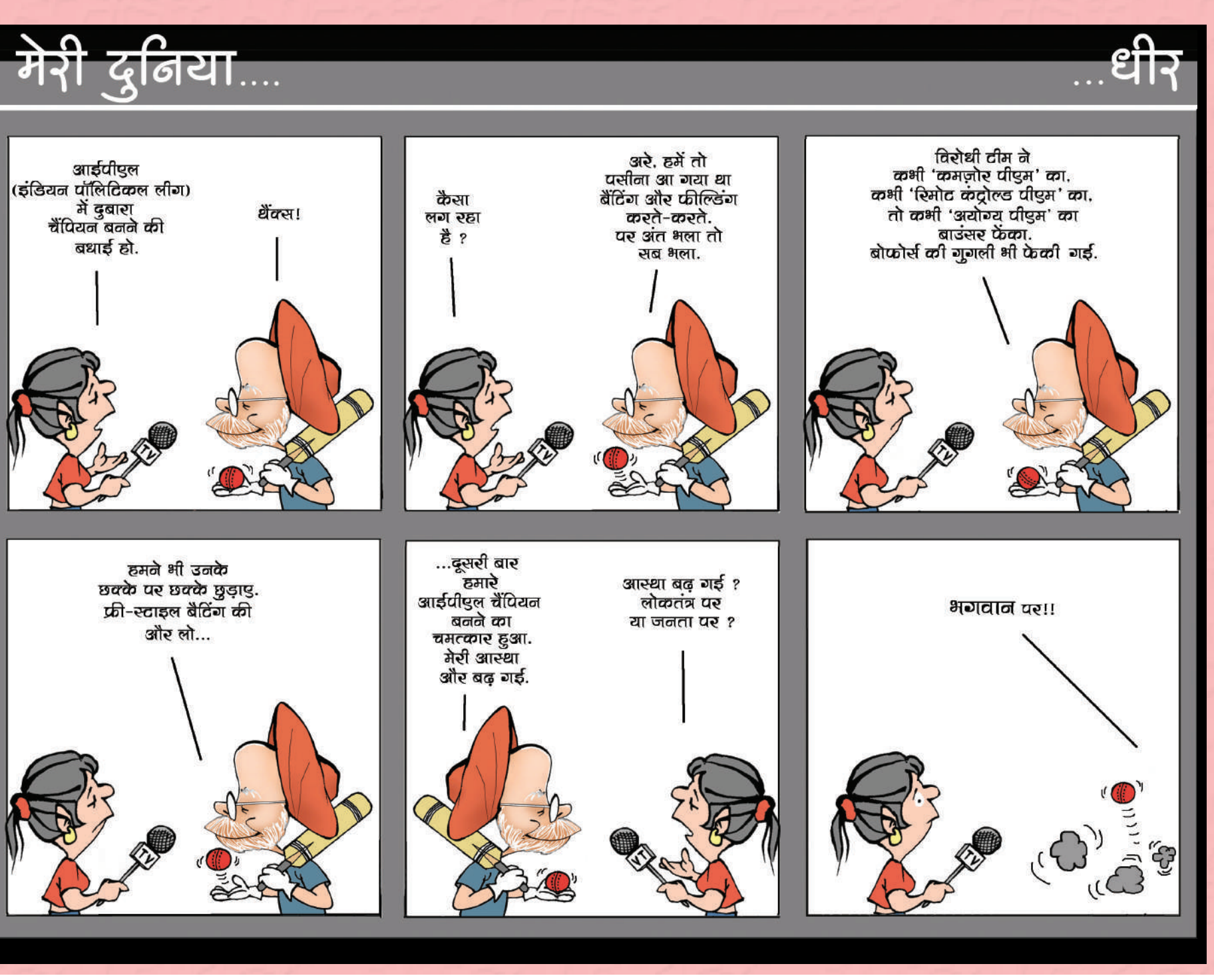

राशिफल

(25 मई से 31 मई तक)

मेष
21 मार्च से 20 अप्रैल

सफलता के लिए ज़रूरी है कि आप स्वयं का मूल्यांकन करें. इस सप्ताह किसी ऐसे व्यक्ति को समझाने में समय बर्बाद न करें, जो अपना मन पहले ही बना चुका हो. याद रखिए आप ख़ुद के भरोसे ही हैं. अपने मन में अनावश्यक विचार न लाएं. व्यावसायिक मामलों में कर्ज़ या पूंजी से जुड़े मसलों में फायदे का समाचार मिलेगा.

वृष
21 अप्रैल से 20 मई

इस राशि के जातकों के लिए यह सप्ताह संतोषजनक रहेगा. आप नई सफलता पाएंगे और पहले से अपनी स्थिति और मज़बूत करेंगे. काम के लोगों से संपर्क में रहना आप के लिए ज़रूरी और फायदेमंद रहेगा. पारिवारिक मदद भी मिलती रहेगी. व्यवसाय में रुके हुए धन की प्राप्ति होगी. नए मौके भी मिलेंगे.

मिथुन
21 मई से 20 जून

इस सप्ताह आप लक्ष्य के निकट ही रहेंगे. यह नए अवसरों को भुनाने का समय है. एक नई शुरुआत करने का समय है, हालांकि सिर्फ़ किसी को प्रभावित करने के लिए ऐसा करना मूर्खता होगी. जिन मामलों को आपने अलग रख दिया था उनमें भी आशा के अनुरूप सुधार देखने को मिलेगा. व्यावसायिक मामलों में आप मज़बूत स्थिति में रहेंगे.

कर्क
21 जून से 20 जुलाई

छुट्टियों के बाद अब यह काम का वक्त है, आप तरोताज़ा होकर नए विचारों और नज़रिए के साथ काम करेंगे. आपने पुराने अनुभवों पर काफी सोचा है आपने, ऐसे में उनसे सीखकर अपने काम के तरीक़े में एक नई दिशा अपना रहे हैं. व्यावसायिक मामलों में काफी लाभ होगा और नए आयामों के बारे में जानकारियां मिलेंगी.

सिंह
21 जुलाई से 20 अगस्त

इस सप्ताह सफलता के लिए नए तरीक़े अपना सकते हैं, लेकिन यह भी ज़रूरी है कि आप अपने लक्ष्यों को न भूलें. अभी छुट्टियां चल रही हैं, यही सही वक्त है जब आप स्वयं को समय दें और आगे की रणनीति भी तैयार करें. व्यवसाय में इस हफ्ते फायदे के सौदे आपको बड़ा सोचने की छूट देंगे.

कन्या
21 अगस्त से 20 सितंबर

इस सप्ताह आप सफलता का पूरा आनंद उठाएंगे. अपनी शर्तों पर चलना संभव होगा. याद रखिए, हर चमकने वाली चीज़ सोना नहीं होती. इसलिए बिना सोचे-समझे और जांच-पड़ताल किए कोई भी नया क़दम सफल नहीं हो सकता. व्यावसायिक मामलों में निवेश के नए क्षेत्र तलाशने के लिए अच्छा समय है.

तुला
21 सितंबर से 20 अक्तूबर

यह व्यस्तता का समय है, नई चुनौतियों और परिस्थितियों को आप बड़ी कुशलता से संभाल पाएंगे. आप यह भी पाएंगे कि बिना ज़मीनी सच्चाई को समझे और पूरा ज़ोर लगाए ही सफलता नहीं मिल सकती. विजेता बनने के लिए कड़ी मेहनत करनी होगी. व्यावसायिक मामलों में भी आप महत्वपूर्ण योजनाएं बनाते रहेंगे.

वृश्चिक
21 अक्तूबर से 20 नवंबर

इन छुट्टियों में आपने अपना समय ऐसी चर्चाओं में बिताया है, जहां अपने विचार रखने के साथ-साथ दूसरों से भी बहुत कुछ सीखा है. इसका लाभ मिलेगा. इस हफ्ते आपका काम करने का तरीक़ा और मुद्दों की आपकी समझ प्रशंसा का विषय बनेगी. व्यावसायिक मामलों में नए अवसर आपकी स्थिति और मज़बूत करेंगे.

धनु
21 नवंबर से 20 दिसंबर

आप अवसरों का पूरा लाभ उठाकर न सिर्फ़ काम निपटा पा रहे हैं, बल्कि अपने काम के दम पर तरक्की पाने का दावा भी ठोक रहे हैं. लीक से हटकर काम करना भी आपकी विशेषता रहेगी. चर्चाओं से ज़्यादा महत्वपूर्ण लोगों से संबंध बनाना बेहतर रहेगा. व्यवसाय में निविदाओं, सौदों और नए व्यापार के लिए अच्छा सप्ताह है.

मकर
21 दिसंबर से 20 जनवरी

नए क्षेत्रों को मानसिक और वास्तविक स्तर पर जांच परख कर आगे बढ़ना सर्वश्रेष्ठ है. अतिरिक्त मेहनत करनी होगी, लेकिन सफलता भी उसी अनुपात में मिलेगी. अभी तक छूट रहे मामले भी हल हो जाएंगे. व्यावसायिक मामलों में बाज़ार में नए प्रयासों की शुरुआत के लिए सही सप्ताह है.

कुंभ
21 जनवरी से 20 फरवरी

ऐसी परिस्थितियां बन रही हैं जिनका फायदा आपके लक्ष्यों और आकांक्षाओं को मिल सकता है. इस सप्ताह आप धीरे-धीरे ही सही लेकिन कुछ महत्वपूर्ण सफलताएं अपने खाते में डाल सकेंगे. ध्यान रखें, ज्यादा नम्र रवैये से आपको नुकसान हो सकता है. व्यवसाय के क्षेत्र में आप अगर कम जोखिम वाले रास्ते पर चलें तो बेहतर होगा.

मीन
21 फरवरी से 20 मार्च

इस हफ्ते काम के क्षेत्र में परेशानियां हो सकती हैं. हालांकि आप रचनात्मकता, नएपन और नई सोच से परिपूर्ण हैं. मुश्किलों से जूझने की क्षमता ही हार और जीत में अंतर बनाएगी. हफ्ते के अंत तक महत्वपूर्ण सफलता मिल सकती है. व्यवसाय में देरी से बचें और ध्यान रखें कि कोई विश्वासपात्र धोखा न दे.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पाकिस्तानी बिसात पर अमेरिकी मोहरे

नईमा परवेज़

पाकिस्तान के सबसे ज़्यादा बिकने वाले उर्दू अख़बार *जंग* के एक बड़े स्तंभकार नाज़िर नाजी अपने आठ मई के स्तंभ में एक बड़ी चौंकाने वाली बात लिखी है. नाजी ने लिखा है : अफ-पाक का हिस्सा बनने के बाद पहली बार इलाक़े के दोनों इनचार्ज एक साथ अमेरिका में हाज़िर हुए. करज़ई को ऐतिहासिक तौर पर अपनी हैसियत मालूम है. हमारे सद्र (राष्ट्रपति) अफ-पाक की तरफ से नए-नए गए हैं. हमें यक़ीनन नतीजे पर ताज्जुब हुआ. जो कुछ दिया गया, वह कुछ यूं है-किताबें, यूनीफार्म, स्टेशनरी और ट्रांसपोर्ट का इंतज़ाम किया कराया मिलेगा-रोज़ का जेब ख़र्च साथ-साथ देते रहेंगे. अफगानिस्तान में बीते दिनों से अफगान शासकों को जेब ख़र्च मिलता आया है, करज़ई तक को. अब हमें भी मिलेगा. मैं अफ-पाक में छिपे मतलब को इस तरह देखता हूं. पहले हम उप-महाद्वीप और दक्षिण एशिया के महत्वपूर्ण देश थे. अब हम अफगानिस्तान से नत्थी कर दिए गए हैं. भूतकाल का उप-महाद्वीप, और पूर्वी पाकिस्तान खोने के बाद भुट्टो साहिब का तलाश किया हुआ दक्षिण एशिया, जिसे वह भारत का पिछवाड़ा नहीं मानते थे बल्कि उसे मध्य एशिया की अगाड़ी कहते थे. अपनी बात साबित करने के लिए ही उन्होंने इस्लामी कांफ्रेंस आयोजित की थी, जिसकी सज़ा उन्हें दे दी गई. वह सब कुछ सपना हो गया. शब्दावली के बदलाव से जो फ़र्क़ आया वह यह है कि हम न उप-महाद्वीप की ऐतिहासिक विरासत और उसके फैलाव में हिस्सेदार रहे, न दक्षिण एशिया के लंबे-चौड़े इलाक़े के महत्वपूर्ण सदस्य रहे और न ही मध्य एशिया की अगाड़ी बनकर तेल और भूगोल की ताक़त को अपनी सामरिक पहचान में शामिल कर सके. हम अपने सारे संभावित विस्तार को छोड़ कर अफगानिस्तान में सामरिक गहराई ढूंढ़ने जा निकले. यह उसी तरह था कि ज़मीन के नीचे रहने वाले किसी प्राणी को खुले मैदान उपलब्ध हों, लेकिन वह बिल के अंदर छुप जाने का इंतज़ाम करता रहे. इंतज़ाम हो गया. हमें सामरिक गहराई तो न मिली-सामरिक गहराई को हमारे साथ मिला दिया गया और हम अफ-पाक हो गए. अब हम अफ-पाक की अगाड़ी हैं.

नाज़िर नाजी का यह लेख पाकिस्तान की शतरंजी बिसात पर खेले जाने वाले खेल के सटीक आंकड़े हैं. सच्चाई यह है कि उप-महाद्वीप के एक हिस्से को अलग किए जाने की पूरी तैयारी चल रही है, लेकिन उप-महाद्वीप का बड़ा और अभिन्न अंग होने के बावजूद भारत में अभी तक कोई गंभीर विचार-विमर्श नहीं हो रहा है. तालिबान के नाम पर खेले जाने वाला यह खेल क्या रंग दिखाएगा, यह तो आने वाला समय ही बताएगा, लेकिन इस पूरे खेल के कुछ इशारे मिलने शुरू हो गए हैं. पड़ोस में लगी आग को बुझाने के उपाय नहीं किए गए तो यह आग पूरे दक्षिण एशिया को अपनी लपेट में ले सकती है. पाकिस्तान से अफगानिस्तान तक खेला जाने वाला यह खेल हमारे अपने लिए चिंता का विषय है. क्या तालिबान इतनी बड़ी ताक़त बन गए हैं कि अफगानिस्तान में अमेरिकी और नाटो की फौजें उनको पिछले आठ वर्षों में काबू नहीं कर पाई हैं? क्या पाकिस्तानी तालिबान अफगानिस्तान में 1994 में उभरने वाले तालिबान का हिस्सा हैं या फिर वे किसी और के लिए काम कर रहे हैं? तालिबान को मिलने वाले हथियार और पैसे कहां से आ रहे हैं? क्या कोई आतंकवादी संगठन किसी देश की फौज से टक्कर लेने की कोशिश अपने बल-बूते पर कर सकता है? इन, और इन जैसे कई और सवालों पर गंभीरता से सोचना ज़रूरी है. तालिबान के उत्थान को सिर्फ़ एक धार्मिक उन्माद का नाम देकर टाला नहीं जा सकता. इस धार्मिक उन्माद के पीछे कौन सी ताक़तें काम कर रही हैं और वे इस पूरे उप-महाद्वीप में क्या खेल खेल रही हैं, इस पर गंभीरता से विचार होना चाहिए ताकि पाकिस्तान में लगी इस आग को फैलने से रोका जा सके. पाकिस्तान से आने वाली ख़बरों के अनुसार, 2 मई 2009 को स्वात, बुनेर और दीर के इलाक़ों में शुरू होने वाली फौज की कार्रवाई के कारण अभी तक 10 लाख से अधिक लोगों का पलायन हो चुका है. यूएनएचसीआर और रेड क्रॉस जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठन भी बेघर होने वाले ख़ानदानों की मदद के लिए मैदान में आ चुके हैं. यह भी कहा जा रहा है कि फौज दक्षिण वज़ीरिस्तान में भी ऑपरेशन की तैयारी कर रही है. इस हिसाब से आने वाले दो महीनों में बेघर लोगों की संख्या 25 लाख तक पहुंच जाने का अनुमान है. और अगर उसके बाद भी यह ऑपरेशन जारी रहता है, तो उनकी संख्या का सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है. न सिर्फ़ पाकिस्तान बल्कि अमेरिकी हरकारों ने ऑपरेशन शुरू होने से पहले यह कहा था कि केवल कुछ सप्ताह में ही ये इलाक़े तालिबान से खाली करा लिए जाएंगे. अब अमेरिकन काउंटर इंटरजेंसी के एक्सपर्ट माने जाने वाले डेविड किलकुल्लेन का कहना है कि पाकिस्तानी फौज के लिए इस तरह की स्थिति से निपटना संभव नहीं है.

इस का मतलब है कि अफगानिस्तान के बाद पाकिस्तान में भी तालिबान के विरुद्ध ऑपरेशन के लिए अमेरिकी और नाटो की मदद की दरकार होगी. ऐसी स्थिति में पाकिस्तान के हालात क्या होंगे, इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है. इराक़ में भी अमेरिकी विनाशकारी हथियारों के नाम पर घुसे थे जो बाद में ग़लत साबित हुआ. कहीं ऐसा ही खेल पाकिस्तान में खेलने की तैयारी तो नहीं हो रही, इस पर नज़र रखना आवश्यक है.

पाकिस्तान के शासक मुंह खोलने से पहले अमेरिका से इजाज़त लेते रहे हैं और यही वजह है कि अब अमेरिकी पाकिस्तान में अपनी मनमानी करने पर उतर आए हैं. अमेरिकी मीडिया से लेकर पाकिस्तानी अख़बारों तक यह संदेश दिया जा रहा है कि इतनी भारी संख्या में लोगों का पलायन फौज के ऑपरेशन के बाद शुरू हुआ. फौज का ऑपरेशन शुरू होते ही पाकिस्तान में डॉलरों की बरसात शुरू हो गई है. लेकिन यह सब अपनी जगह, पाकिस्तान में आम आदमी बेहाल है और सरकार या कोई भी राजनीतिक पार्टी उसका दुख-दर्द बांटने के लिए तैयार नहीं है. कहा यह जा रहा है कि तालिबान पर फौज के कंट्रोल के फौरन बाद इन लोगों को उनके इलाकों में वापस भेज दिया जाएगा. लेकिन यह कब होगा, इस का कोई भी संकेत नहीं दिया जा रहा. इतनी भारी तादाद में लोगों के पलायन का असर पाकिस्तान के दूसरे प्रांतों पर पड़ेगा. कराची में पठानों और मोहाजिरों और लाहौर में पठानों और पंजाबियों के बीच पहले भी झगड़े होते रहे हैं. इतनी बड़ी संख्या में लोगों के पलायन के बाद पाकिस्तान के दूसरे इलाक़ों में उनको बसाया जाएगा और इसके कारण सामाजिक और आर्थिक ढांचे पर पड़ने वाले बोझ की वजह से वहां पहले से रहने वालों के दिल में इन लोगों के विरुद्ध भावनाएं परवान चढ़ेंगी. इन तमाम समस्याओं से जूझना पाकिस्तान सरकार के लिए आसान नहीं होगा.

कुल मिला कर असर यह है कि अपना घर छोड़ कर जानेवाले लोग अपने पुराने इलाक़ों में वापस नहीं जा पाएंगे. पाकिस्तान के क़बाइले इलाक़े अब पाकिस्तान के कंट्रोल में रहेंगे और वहां पर तालिबान के नाम पर पहले अमेरिका और नाटो की फौजें ऑपरेशन करेंगी और जब सारे लोग उन इलाक़ों को ख़ाली कर जाएंगे तब फिर अमेरिकी कंपनियां अपने साज़-ओ-सामान के साथ गैस और तेल की तालाश में अपने खेमे वहां गाड़ देंगी. और पाकिस्तान के शासक अपना-अपने हिस्सा लेकर सिर्फ़ यह कह कर अपना दामन छुड़ा लेंगे कि-

दुनिया में बादशाह है सो है वो भी आदमी
और मुफ़लिस-ओ-गदा है सो है वो भी आदमी
ज़रदार (ए) है सो है वो भी आदमी
नेमत जो खा रहा है सो है वो भी आदमी
टुकड़े चबा रहा है
सो है वो भी आदमी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

नेपाल में लटक गया लोकतंत्र

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

नेपाल में एक बार सत्ता में आने के बाद माओवादी मात खाने को तैयार नहीं हैं. सेना प्रमुख रुकमंगुड कटवाल की बर्ख़ास्तगी का मसला राष्ट्रपति और कार्यवाहक प्रधानमंत्री पुष्प कमल दहल उर्फ प्रचंड के बीच मूंछ की लड़ाई में तब्दील हो गई है. ग़ौरतलब है कि प्रचंड ने माओवादियों और अपनी गुरिल्ला सेना के लड़ाकों को सेना में भर्ती का विरोध करने वाले सेना प्रमुख कटवाल को बर्ख़ास्त कर दिया था. लेकिन अन्य दलों की मांग पर राष्ट्रपति ने सेना प्रमुख की बर्ख़ास्तगी पर रोक लगा दी. राष्ट्रपति के फ़ैसले का विरोध करते हुए प्रचंड ने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया. इस मुद्दे पर संसद में माओवादियों को छोड़ अन्य सभी दल राष्ट्रपति के पक्ष में गोलमंद हो गए हैं. इसके विरोध में माओवादी संसद चलने ही नहीं दे रहे हैं. इससे एक नया संवैधानिक संकट खड़ा हो गया है. इस बीच, सियासी संकट को हल करने के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने माओवादियों पर दबाव बढ़ाना शुरू कर दिया है. पिछले दिनों अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी के राजदूतों ने प्रचंड से मिल कर नई सरकार के गठन का कोई रास्ता निकालने पर बातचीत की. उधर, सरकार बनाने का दावा पेश कर चुके सीपीएन-यूएमएल नेता माधव कुमार नेपाल ने भी भारतीय विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी से फोन पर सलाह-मशविरा किया. नेपाल ने मुखर्जी को देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति की जानकारी दी. मुखर्जी ने यह बात फिर दोहराई कि नेपाल में भारत स्थिरता और शांति चाहता है. ग़ौरतलब है कि 601 सदस्यीय संसद में 351 सदस्यों का समर्थन होने के बावजूद माधव नेपाल के नेतृत्व में सीपीएन-यूएमएल की नई सरकार अभी तक नहीं बन पाई है.

सच्चाई यह है कि भारत को छोड़ दें तो इस उपमहाद्वीप के किसी अन्य देश में लोकतंत्र ढंग से पनप ही नहीं पाया. इनमें नेपाल भी शामिल है. चार मई को प्रधानमंत्री पुष्प कमल दहल उर्फ प्रचंड के इस्तीफे के बाद नेपाल अचानक अस्थिर दिखने लगा. तथाकथित तौर पर लोकतंत्र की राह पकड़ चुका नेपाल फिर से डगमग और हिला हुआ दिखने लगा. दस साल तक चले गृहयुद्ध के बाद राजशाही को बाहर का रास्ता दिखाकर नेपाल की जनता ने ख़ुद के लिए एक प्रगतिशील लोकतंत्र के निर्माण की संकल्पना की थी. संविधान सभा चुनकर अपने नुमाइंदों को सत्ता पर काबिज़ कर दिया था. इसके सदस्यों का दायित्व था कि नेपाल की जनता के लिए एक नया अनुबंध तैयार करें, जो किसी प्रगतिशील लोकतांत्रिक ढांचे के जैसा हो, जिसमें नेपाल के हर वर्ग, हर तबके को विकसित होने का मौका मिले. पिछले दिनों यह सरकार गिर गई. जनता का विश्वास टूट गया, और उन्हें एक बार फिर से वैसी ही अनिश्चितता का सामना करना पड़ रहा है, जिसे वे अपने वर्तमान के लिए जिम्मेदार मानते हैं.

नेपाल के सेना प्रमुख रुकमंगुड कटवाल को बर्ख़ास्त करने के विवाद में प्रधानमंत्री प्रचंड ने इस्तीफा दे दिया. सेना प्रमुख ने प्रचंड के फैसले को मानने से इंकार कर दिया था. दूसरी तरफ, राष्ट्रपति ने भी कटवाल की बरख़ास्तगी के फैसले पर अपने विशेषाधिकार का इस्तेमाल करते हुए प्रचंड सरकार को संविधान के नियमों का पालन करने और गठबंधन सरकार में शामिल अन्य दलों से सलाह-मशविरा करने को कह दिया. इसी कड़ी में नेपाल की गठबंधन सरकार में दरार पड़ गई. साझा सरकार में शामिल चार प्रमुख राजनीतिक पार्टियों ने प्रचंड की बुलाई कैबिनेट बैठक का बहिष्कार कर दिया. वहीं सीपीएन-यूएमएल ने आनन-फानन में सरकार से समर्थन वापस ले लिया. सीपीएन-यूएमएल के साथ-साथ सरकार में शामिल मधेशी पीपल्स राइट्स फोरम, सद्भावना पार्टी और सीपीएन यूनाइटेड भी प्रचंड सरकार के ख़िलाफ़ खड़ी हो गई.

नेपाल ने मुखर्जी को देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति की जानकारी दी. मुखर्जी ने यह बात फिर दोहराई कि नेपाल में भारत स्थिरता और शांति चाहता है. ग़ौरतलब है कि 601 सदस्यीय संसद में 351 सदस्यों का समर्थन होने के बावजूद माधव नेपाल के नेतृत्व में सीपीएन-यूएमएल की नई सरकार अभी तक नहीं बन पाई है.

सवाल है कि देश में राजशाही समाप्त कर लोकशाही लाने वाले प्रचंड के साथ ऐसा क्यों हुआ? दरअसल, सत्ता पर काबिज़ होते ही प्रचंड विवादों में घिरने लगे. राजशाही ख़त्म करने के बाद नेपाल में नायक बने प्रचंड जल्द ही नेपाल की जनता की आशाओं के विपरीत व्यवहार करने लगे. सात दलों के साथ हुए समझौते के मुताबिक जहां माओवादियों को हथियार डालकर उन्हें वापस मुख्यधारा में शामिल करने की बात पर समझौता हुआ था, वहीं सरकार की बागडोर संभालते ही प्रचंड, माओवादी ताक़तों और गुरिल्ला सेना को लगातार मजबूत करने की ताक में रहे. इसके लिए भारत के साथ ऐतिहासिक रिश्ते को भी ताक पर रख वह चीन के साथ गलबहियां डालने लगे. चीन से नेपाल सरकार की बढ़ती नज़दीकी जहां जनता को नागवार गुज़रने लगी, वहीं भारत के साथ-साथ दुनिया भर के कई लोकतांत्रिक देशों को भी इस नज़दीकी से किसी षड्यंत्र की बू आने लगी. इसी बीच गुरिल्ला सेना के 19,000 लड़ाकों को सेना में भर्ती कराने की जुगत में प्रचंड लग गए. इसी मसले पर सेना प्रमुख कटवाल प्रचंड के विरोध में खुलकर सामने आ गए. तमाम कोशिशों के बाद भी जब कटवाल ने माओवादियों को सेना में लेने से इंकार कर दिया और सरकार के सामने यह साफ कर दिया कि नेपाल की सेना केवल नेपाल की जनता के लिए है और उसके साथ किसी तरह का खिलवाड़ नहीं करने दिया जाएगा, तो मजबूर होकर प्रचंड को सेना प्रमुख कटवाल को बर्ख़ास्त करने का फैसला लेना पड़ा. इसी फैसले ने नेपाल में राजनीति की धारा बदल दी. ग़ौरतलब है कि प्रधानमंत्री बनने से पहले गुरिल्ला सेना का हिस्सा रहे प्रचंड शुरू से ही चाहते थे कि उनकी इस सेना को मुख्यधारा में लाया जाए. उनके इरादों को सेना प्रमुख पहले से ही भांप चुके थे, लिहाजा सेना में माओवादियों की भर्ती की प्रत्येक सरकारी कोशिश को टाल देते थे. सूत्र बताते हैं कि माओवादी सरकार बनने के तुरंत बाद ही सेना प्रमुख कटवाल ने तीन हज़ार सैनिकों की भर्ती की और उस वक्त किसी भी माओवादी को सेना में घुसने नहीं दिया. इसके बाद से ही सेना प्रमुख और प्रधानमंत्री प्रचंड का द्वंद्व सामने आ गया. इन वजहों से प्रधानमंत्री और सेना प्रमुख में मतभेद और भी गहरे हो गए और दोनों के बीच सवाल-जवाब का दौर शुरू हो गया. इसके बाद जब 19,000 गुरिल्ला लड़ाकों को सेना में शामिल किए जाने का सरकारी फरमान आया तो कटवाल सरकार के ख़िलाफ़ खुलकर सामने आ गए.

दरअसल सेना प्रमुख कटवाल की भूमिका देखने में जितनी आसान है, वास्तविकता कहीं अलग है. असलियत यह है कि सेना प्रमुख पूर्व के राजघराने से संबंध रखते हैं, वह पूर्व राजा महेंद्र के दत्तक पुत्र माने जाते हैं. भारत में अपनी शिक्षा के बाद नेपाल सेना में शामिल हुए कटवाल गृहयुद्ध के दौरान राजपरिवार के साथ रहे. अपनी इसी पृष्ठभूमि के कारण वह हमेशा से माओवादी सरकार की आंख की किरकिरी बने रहे. लेकिन सेना को साधने की दिशा में प्रचंड की सभी कोशिशें नाकाम हो रही थीं. प्रचंड के ख़ुद के बयान वाला वीडियो टेप भी इस पर मुहर लगाता है कि वह नेपाल सेना के ख़िलाफ़ एक ख़तरनाक योजना को अंजाम देने वाले थे. उधर, सूत्रों के हवाले से यह बात भी सामने आ गई कि सेना प्रमुख को हटाने का मशविरा उन्हें चीन की तरफ से मिला था. कहना न होगा कि चीन की हमेशा से कोशिश रही है कि भारत के साथ नेपाल अपने सभी मैत्री संबंध ख़त्म कर दे.

बहरहाल, नेपाल में आया यह राजनीतिक भूचाल आज 10 साल तक चले गृह युद्ध के बाद हुए शांति समझौते पर सवालिया निशान लगा रहा है. यह शांति समझौता दो ढांचों-नेपाल सेना और गुरिल्ला सेना-पर टिका है. पर आज ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी बन चुके है. 2006 में शांति स्थापित होने के बाद माओवादी सेना को समझौते के तहत अपने हथियार संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में जमा करा देना था और धीरे-धीरे उनको मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया जाना था. इस मामले में प्रचंड की अगुआई वाली माओवादी सरकार का जो वास्तविक मकसद था, उसका खुलासा प्रचंड के ख़ुद के बयान वाले वीडियो से हो जाता है. ज़ाहिर है, माओवादी शांति के इस अवसर का फायदा नेपाल सेना में मूलभूत परिवर्तन करके उसे हमेशा के लिए माओवादी विचारधारा के अधीन करना चाहते थे, ताकि वह आसानी से चीन के तरीक़े का तथाकथित साम्यवादी गणराज्य नेपाल में भी स्थापित कर सकें.

राहुल मिश्र

rahulchauthiduniya@gmail.com

प्रभाकरण की मौत के बाद का जाफना

इस वक़्त वन्नी में मातम का माहौल है. धमाकों की आवाज़ें थम चुकी हैं और चारों तरफ सन्नाटा पसरा है. पिछले तीस साल से यहां एक सपना पनप रहा था, अब उसका कत्ल हो गया और वह सपना बिखर गया. इस वर्ष 17 मई को तमिल लड़ाकों ने यह क़बूल कर लिया कि ईलम की मांग एक अनचाहे अंत पर पहुंच गई है. अगले ही दिन, 18 मई को श्रीलंका सेना ने घोषणा कर दी कि तमिल विद्रोहियों से ज़मीन का आख़िरी टुकड़ा भी छीन लिया गया है. श्रीलंका के सरकारी टीवी पर ख़बर आई कि लिट्टे प्रमुख वेलूपिल्लई प्रभाकरण को मार गिराया गया. इसके साथ ही सेना ने प्रभाकरण के दो बेटों में एक चार्ल्स एंथनी को भी मार गिराने की घोषणा कर दी.

श्रीलंका सेना के लिए यह महज एक आतंकी विद्रोह को ख़त्म करने भर की उपलब्धि नहीं. उनके लिए इस युद्ध को अंजाम तक पहुंचाना एक विश्व युद्ध जीतने के बराबर है. 1993 से लगातार चले आ रहे इस संघर्ष पर पूर्ण विराम लगाते हुए श्रीलंका सेना के प्रमुख लेफ्टिनेंट जनरल सारथ फोंसेका ने देश के सामने अपनी ख़ुशी का इज़हार कुछ इन शब्दों में किया–हमने देश के उत्तरी छोर को आतंकवादियों से आज़ाद कराकर समूचे देश को आज़ाद करा दिया.

लिट्टे के सफाए की किसी भी ख़बर की पुष्टि नहीं की जा सकती. युद्ध के इस क्षेत्र से सभी ख़बरें या तो श्रीलंका सरकार की तरफ से आ रही हैं या फिर लिट्टे की संचालित वेबसाइटों से या फिर लंदन में बैठे लिटट्े के उन सूत्रों से जो अबतक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लिट्टे का प्रचार–प्रसार कर रहे थे. विदेशी मीडिया को इलाक़े के आसपास जाने से पहले ही रोक दिया गया और युद्ध के अंजाम पर पहुंचने की आहट के बाद श्रीलंका पहुंचने की कोशिश कर रहे विदेशी पत्रकारों को कोलंबो उतरने की इजाज़त नहीं दी जा रही है. सरकारी ख़बरों से इत्तफाक न रखने वाले देसी पत्रकार या तो आतंकवादी और गद्दार घोषित कर जेल भेज दिए गए हैं या फिर मारे जा चुके हैं. विदेशी पत्रकारों को युद्ध की वास्तविक तस्वीर देखने नहीं दी जा रही है. वैसे इससे पहले भी दो बार श्रीलंका सेना ने प्रभाकरण के मौत की घोषणा की थी, लेकिन बाद में वे गलत साबित हुई. वैसे इस बार जिस चालाकी और चतुराई के साथ श्रीलंका सरकार ने लिट्टे के ख़िलाफ़ अभियान शुरू किया, दुनिया भर से युद्ध की असलियत को छिपाया और जो तस्वीर सामने आई–राजपक्षे और सेना प्रमुख के अभिनंदन की–इन सबसे इस बार साफ है कि श्रीलंका सेना ने वाकई कामयाबी पा ली है. वहीं राजपक्षे ने भारत के विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी को टेलीफोन पर सूचना दी कि लिट्टे का सफाया किया जा चुका है, और युद्ध के दौरान प्रभाकरण को भी मार दिया गया है. भारतीय विदेश मंत्रालय ने बयान जारी कर तमिल समस्या के वास्तविक मुद्दों पर ध्यान देने की बात पर ज़ोर दिया.

श्रीलंका सेना के बयान के मुताबिक प्रभाकरण को 200 लिट्टे लड़ाकों के साथ सोमवार को सुबह नो फायर जोन में घेर लिया गया और वहां से निकलने की कोशिश में जब प्रभाकरण अपने दो साथियों के साथ भागने की फिराक में एक एंबुलेंस में जा घुसा तो सेना ने निशाना साध कर मोर्टार से उस पर हमला कर दिया. इससे गाड़ी में सवार प्रभाकरण समेत उसके दानों सहयोगी भी मारे गए. सेना अधिकारियों को इन लड़ाकों के शव को पहचानने में ज्यादा देर नहीं लगी और सरकारी टीवी से सरकार ने प्रभाकरण के मारे जाने की पुष्टि कर दी. बाद में 19 मई को टीवी चैनलों पर प्रभाकरण के शव को भी दिखा दिया गया. इससे पहले, श्रीलंकाई संसद में राष्ट्रपति राजपक्षे ने लिट्टे के ख़िलाफ़ जंग जीत लेने की घोषणा की.

यक़ीनन यह मौका श्रीलंका के लिए अहम है. 26 साल से चले आ रहे आतंक को जड़ समेत उखाड़ फेंकने का एशिया में यह पहला मामला है. यह विश्व युद्ध भी इसलिए है, क्योंकि इस युद्ध का असर दुनियाभर पर पड़ा और इस को लड़ने के पीछे के कारण श्रीलंका की राजनीति से अलग है. 9/11 को अमेरिका पर हुए हमले के बाद दुनियाभर में आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध का एलान कर दिया गया. पूर्व राष्ट्रपति बुश के *वॉर ऑन टेरर* का जुमला सीधे तौर पर एशिया के परिप्रेक्ष्य में अहम हो गया. आतंकवाद दुनियाभर में सबसे घिनौना शब्द बन गया. दुनिया भर के देशों में आतंकवाद के स्वरूप को परिभाषित किया जाने लगा और उसकी पहचान की जाने लगी. इसी कड़ी में, बुश काल में ही श्रीलंका सरकार ने भी तमिल विद्रोह और ईलम की मांग को *वॉर ऑन टेरर* के दायरे में पहुंचा दिया. पहले दो साल तक श्रीलंका सेना ने लगभग एक चौथाई इलाक़े तक फैले तमिल क्षेत्र की घेराबंदी शुरू कर दी. श्रीलंका के विदेश मंत्री इस फतह के दौरान अधिकांश समय विदेश दौरे पर रहे. सेना प्रमुख फोंसेका को अपने मक़सद में कोई शक़ नहीं था. विदेशी मित्रों से युद्ध के लिए सैनिक और आर्थिक मदद तो *वॉर ऑन टेरर* के नाम पर मिलती ही रही, पड़ोसी देशों से लिट्टे के ख़िलाफ़ इंटेलिजेंस रिपोर्ट भी मिल रही थी. लिट्टे को असलहे की सप्लाई लाइन भी धीरे–धीरे कटने लगी. श्रीलंका की सरकार लिट्टे को श्रीलंका के एक छोटे से उत्तरी कोने में घेरने में सफल हो गई. लिट्टे की वायु सेना और नौसेना का इस समय तक सफाया हो चुका था. हज़ारों लड़ाके भी मारे जा चुके थे. इस युद्ध में लाखों की संख्या में तमिल नागरिकों को विस्थापित होना पड़ा जो आज भी उत्तरी कोने में बदहाली के आलम में जी रहे हैं.

इनके अलावा यह युद्ध श्रीलंका अति महत्वपूर्ण इसलिए था, क्योंकि इसके जरिए उसे श्रीलंका के उत्तरी छोर और देश के लगभग एक चौथाई हिस्से पर फतह हासिल करनी थी. उसके सामने ऐसे दुश्मन थे जो वार करने में कभी संकोच नहीं करते. लिहाजा इस युद्ध में श्रीलंका को भी संकोच त्यागना पड़ा. देश की तमिल जनसंख्या पहले भी राजनीति में कोई मायने नहीं रखती थी और इस युद्ध के एलान के बाद तो सेना में उसके ख़िलाफ़ वही नफरत थी जो पहले या दूसरे विश्व युद्ध में दो अगल खेमों के सीमावर्ती देशों में देखने को मिली थी.

अमेरिका में बुश के बाद ओबामा की सरकार आते ही श्रीलंका ने भी युद्ध के जुमले को बदल दिया. *वॉर ऑन टेरर* की जगह युद्ध को सामाजिक और आर्थिक हस्तक्षेप की संज्ञा दे दी गई. मानवाधिकार हनन की शिकायतों को श्रीलंका सरकार बराबर नकारती रही और तमिल विद्रोहियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई तेज़ करती रही. इस मामले में अहम भूमिका संयुक्त राष्ट्र को निभानी थी, जो उसने नहीं निभाई.

श्रीलंका सेना के बयान के मुताबिक प्रभाकरण को 200 लिट्टे लड़ाकों के साथ सोमवार को सुबह नो फायर जोन में घेर लिया गया और वहां से निकलने की कोशिश में जब प्रभाकरण अपने दो साथियों के साथ भागने की फिराक में एक एंबुलेंस में जा घुसा तो सेना ने निशाना साध कर मोर्टार से उस पर हमला कर दिया.

संयुक्त राष्ट्र महासंघ के महासचिव बान की मून ने मामले में मध्यस्तथा करने के लिए भारतीय मूल के शीर्षस्थ अधिकारी विजय नांबियार को भेजा. वह ख़ाली हाथ लौट आए, जिसके बाद श्रीलंका को अंतरराष्ट्रीय समुदाय से अनौपचारिक हरी झंडी मिल गई. ग़ौरतलब है कि भारतीय विदेश सेवा में रहे नांबियार भारत सरकार में सुरक्षा सलाहकार की भूमिका निभा चुके हैं और उनके भाई सतीश नांबियार श्रीलंका सेना के सुरक्षा सलाहकार हैं. इस सच्चाई पर ग़ौर नहीं किया गया. लिहाजा, सवाल उचित ही है कि क्या संयुक्त राष्ट्र एक बार फिर शांति की प्रक्रिया में अंतरराष्ट्रीय राजनीति का शिकार हुआ है.

आज जब दुनिया के सामने लिट्टे का सफाया हो चुका है, प्रभाकरण की मौत हो चुकी है, ऐसे में तमिल ईलम की मांग का दम भी क्या घुट चुका है? क्या श्रीलंका सरकार के पास कोई नीति है कि ईलम की मांग को लोकतांत्रिक समन्वय के जरिए सुलझा सके? या फिर लिट्टे के सफाए के साथ–साथ उसके लिए तमिल मुद्दा भी हमेशा के लिए ख़त्म हो गया है? आज ज़रूरत इस बात की पड़ताल करने की है कि क्यों श्रीलंका पिछले तीस सालों से इस समस्या से जूझ रहा था? क्यों लोगों की भावनाओं का इस्तेमाल कर लिट्टे उन्हें आतंक के रास्ते पर ले जाने में कामयाब हुआ और लिट्टे की उस कामयाबी के पीछे श्रीलंका की सरकार और बहुसंख्यक राजनीति किस हद तक ज़िम्मेदार थी?

आज ज़रूरत है कि आतंक के साए से देश को मुक्त करा लेने के बाद श्रीलंका तमिल जनसंख्या को देश की मुख्यधारा में लाए और उसे भी अधिकार और इज़्ज़त से जीने का समान अवसर मुहैया कराए.

राहुल मिश्र

rahul.chauthiduniya@gmail.com

श्रीलंका सेना के लिए यह महज एक आतंकी विद्रोह को ख़त्म करने भर की उपलब्धि नहीं. उनके लिए इस युद्ध को अंजाम तक पहुंचाना एक विश्व युद्ध जीतने के बराबर है. 1993 से लगातार चले आ रहे इस संघर्ष पर पूर्ण विराम लगाते हुए श्रीलंका सेना के प्रमुख लेफ्टिनेंट जनरल सारथ फोंसेका ने देश के सामने अपनी ख़ुशी का इज़हार कुछ इन शब्दों में किया–हमने देश के उत्तरी छोर को आतंकवादियों से आज़ाद कराकर समूचे देश को आज़ाद करा दिया.

महान लेखक का बुढ़भस

अनंत विजय

सर विदियाधर सूरजप्रसाद नायपॉल, विश्व साहित्य के बड़े नाम हैं, नोबल पुरस्कार विजेता भी हैं. दो दर्जन से अधिक किताबों के लेखक, साहित्य की दुनिया में किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं. कई लोगों का मानना है कि नायपॉल भारतीय मूल के लेखकों में सबसे महत्वपूर्ण लेखक हैं और कुछ हद तक यह सही भी है. एक लेखक के रूप में नायपॉल का उदय पचास के दशक के अंतिम वर्षों में हुआ और उत्तर औपनिवेशिक लेखन में उनके नाम का डंका बजने लगा. उनके शुरुआती उपन्यासों में उनके लेखन की विलक्षणता साफ तौर पर परिलक्षित होती है. उनके शुरुआती उपन्यासों में एक ख़ास क़िस्म की ताज़गी दिखाई देती है, जिसमें जीवन के विविध रंगों के साथ लेखक का ह्यूमर और उसके आसपास के लोक और समाज की घटनाओं का बेहतरीन चित्रण भी है. कई लोगों का मानना है कि नायपॉल के लेखन ने बाद के भारतीय लेखकों के लिए एक ठोस ज़मीन भी तैयार कर दी. साठ और सत्तर के दशक में भी सर विदियाधर के लेखन का परचम अपनी बुलंदी पर था. उस दौरान लिखे उनके उपन्यास–अ हाउस फॉर मि. विश्वास– से उन्हें प्रसिद्धि मिली और इस उपन्यास को उत्तर औपनिवेशिक लेखन में मील का पत्थर माना गया. नायपॉल का लेखक उन्हें लगातार भारत की ओर लेकर लौटता है. नायपॉल ने भारत के बारे में उस दौर में तीन किताबें लिखीं– एन एरिया ऑफ डार्कनेस (1964), इंडिया अ वुंडेड सिविलाइजेशन (1977) और इंडिया: अ मिलियन म्युटिनी नाउ (1990). इस दौर तक तो नायपॉल के अंदर का लेखक बेहद बेचैन रहता था, तमाम यात्राएं करता रहता था और अपने लेखन के लिए कच्चा माल जुटाता था. *एन एरिया ऑफ डार्कनेस* को तो आधुनिक यात्रा साहित्य में क्लासिक्स माना जाता है. इसमें नायपॉल ने अपनी भारत की यात्रा के अनुभवों का वर्णन किया है. इसमें उन्होंने भारत में उस दौर की जाति व्यवस्था के बारे में प्रामाणिकता के साथ लिखा है. बाद के दिनों में, उम्र बढ़ने के साथ–साथ नायपॉल के लेखन में एक ठहराव–सा आ गया. साथ ही विचारों में जड़ता भी. इस्लामिक जगत के जीवन का जो चित्र उन्होंने खींचा है या उसके बारे में उनके जो विचार सामने आए हैं, या फिर 1992 में बाबरी मस्ज़िद को गिराए जाने को जिस तरह नायपॉल ने परोक्ष रूप से सही ठहराया, इन सब बातों से उनका विरोध तो बढ़ा ही, उनसे असहमतियां भी बढ़ीं. लेकिन इन सबके बावजूद, उनके लेखन को एकदम से नकारना नामुमकिन था.

विदियाधर की किताब–अ राइटर्स पीपल, वेज ऑफ लुकिंग एंड फीलिंग–में नायपॉल के पांच लेख हैं जो त्रिनिदाद से लेकर गांधी और विनोबा को समेटते हुए भारतीय मूल के लेखक नीरद सी चौधरी पर टिप्पणी करते हैं. जो पाठक नायपॉल के लेखन से परिचित हैं, उनके लिए इस किताब में न ही कोई नया विषय है और न ही स्थितियां. वहीं बीबीसी का दफ्तर, लेखन के दौर के संघर्ष, पोर्ट ऑफ स्पेन की गलियों में भटकते एक बच्चे की दास्तां– जो नॉयपॉल के लेखन के हस्ताक्षर रहे हैं. नायपॉल इन सारी स्थितियों और संघर्षों का वर्णन अपने उपन्यास– मिगुल स्ट्रीट– में कर चुके हैं. इन दोनों लेखों में कुछ भी नया नहीं है. साथ ही लेखक की पसंद और नापसंद भी उनके लेखन पर भारी पड़ती नज़र आने लगी है. नायपॉल लिखते हैं– 1945 में जब पोर्ट ऑफ स्पेन के सिनेमाघरों में कंसंट्रेशन कैंप की ज़्यादतियों को दिखाया जाता था तो सस्ती सीटों पर बैठनेवाले काले लोग हंसते और चिल्लाते थे. सवाल उठता है कि नायपॉल ने यह किस आधार पर कह दिया कि सिर्फ़ सस्ती सीटों पर बैठने वाले काले लोग ही ख़ुशी का इज़हार कर रहे थे. यह नायपॉल की मानसिकता है, उनके पूर्वाग्रह हैं जो उन्हें इस तरह लिखने को मजबूर करते रहते हैं. लेखक की मानसिकता सिर्फ इस एक वाक्य से भी साफ हो जाती है– सस्ती सीटों पर बैठनेवाले काले लोग.

इस पूरी किताब में नायपॉल के लेखन पर जो लोग पूरी तरह छाए हुए हैं वे हैं उनके पिता सिरीप्रसाद नायपॉल, डेरेक वॉल्कट, अंग्रेज़ी लेखक एंटोनी पॉवेल, फ्रांस के गुस्ताब फ्लाबियर. लेकिन जो सबसे अहम हैं, वे हैं– महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, विनोबा भावे और नीरद सी चौधरी. हालांकि महात्मा गांधी के बारे में नायपॉल ने कुछ भी नया नहीं लिखा है, पहले भी लोग गांधी के बारे में उनकी राय से वाक़िफ़ हैं. अपने लेख– इंडिया अगेन महात्मा एंड ऑफ्टर– में विदिया लिखते हैं– असल में उनमें (गांधी में) किसी तरह की पूर्णता थी ही नहीं, उनका व्यक्तित्व यहां वहां से उठाए गए टुकड़ों से निर्मित हुआ था– व्रत और सादगी के प्रति उनकी मां का प्रेम, इंगलिश कॉमन लॉ, रस्किन के विचार, टॉलस्टॉय का धार्मिक स्वप्न, दक्षिण अफ्रीका की जेल संहिता, मैनचेस्टर की नो ब्रेकफास्ट असोसिएशन वगैरह. 1888 में जब गांधी इंगलैंड पहुंचे तो वह सांस्कृतिक दृष्टि से शून्य थे, वह भारत के इतिहास को नहीं जानते थे, उन्हें भूगोल का ज्ञान भी नहीं था, वह पुस्तकों और नाटकों के बारे में नहीं जानते थे. लंदन पहुंचकर उन्हें यह नहीं पता था कि वह वहां अपने पांव कैसे जमाएंगे. गांधी ने डांस भी सीखा और वॉयलिन भी सीखने की कोशिश की, लेकिन इन सब के दौरान उनके हाथ लगी तो सिर्फ़ हताशा. ये सब बातें विदिया ने अपने लेख में इस तरह लिखी हैं जैसे कि वह गांधी का विश्लेषण करते हुए कुछ नया उद्घाटित कर रहे हों. मैं ऐसा तो नहीं कह सकता कि सर विदिया ने गांधी की पुस्तक *सत्य के प्रयोग* अथवा आत्मकथा नहीं पढ़ी, लेकिन इतना ज़रूर कह सकता हूं कि गांधी के बारे में नॉयपॉल ने नया कुछ भी नहीं लिखा. अपनी आत्मकथा में गांधी ने इन सारी स्थितियों का वर्णन खुले मन से किया है और अपनी अज्ञानता को स्वीकारा भी है. लंदन पहुंचने के बाद मोहनदास को जो महसूस हुआ और जहां–जहां उन्हें अपनी अज्ञानता का अहसास हुआ उसे गांधी ने विस्तार से स्वीकारा है. गांधी ने स्वयं लिखा है कि– उनके विचारों में नया कुछ भी नहीं है, वह तो उतने ही पुराने हैं जितने कि नदी, पर्वत और झरने.

गांधी के बारे में लिखने के बाद नॉयपॉल विनोबा भावे के बारे में लिखते हैं– एक मूर्ख व्यक्ति थे विनोबा भावे, जिन्होंने पचास के दशक में गांधी की नकल करने की कोशिश की. वह गांधी के विभिन्न आश्रमों में रहे थे. उन जगहों की बौद्धिक शिथिलता ने उनके दिमाग़ को भोथरा कर दिया था और यह उनकी आत्मा तक में प्रवेश कर गया था. वह रसोई में काम करते थे, पाखाना भी साफ करते थे...इतनी देर तक चरखा चलाते थे कि गांधी भी उनके बारे में चिंतित रहने लगे थे... ख़ुशी की बात है कि विनोबा को बाद में एक करियर मिल गया– एक सुधारक के रूप में नहीं, बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक तरह के धार्मिक मूर्ख के रूप में जिनके साथ आला नेता फोटो खिंचवाना पसंद करते थे और आशीर्वाद के लिए लालायित रहते थे. विनोबा भावे के बारे में नॉयपॉल की इन टिप्पणियों पर सिर्फ़ इतना ही कहा जा सकता है कि जिन इलाक़ों में विनोबा ने भूदान आंदोलन चलाया वहां के लोगों से जाकर उनके योगदान और अवदान पर बात करने के बाद ही विनोबा का आकलन करना चाहिए और तभी वह वस्तुनिष्ठ आकलन हो सकता है. अपने पूर्वाग्रहों के आधार पर लंदन के एक कमरे में बैठकर किसी के बारे में कुछ भी लिख देना जायज नहीं है. नॉयपॉल इतने पर ही नहीं रुकते हैं. भारतीय लेखक नीरद सी चौधरी को तो वह शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से छोटा आदमी करार देते हैं. इससे भी आगे बढ़कर विदिया कहते हैं– भारत में कोई स्वतंत्र इंटलेक्चुअल लाइफ या लिटररी क्रिटिसिज़्म की परंपरा नहीं है. ये सारी बातें सरासर गलत हैं और भारत के बारे में लेखक की अज्ञानता को ही दर्शाते हैं. आज भारत ने पूरी दुनिया में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा लिया है. चाहे वह सिलिकॉन वैली हो या फिर नासा या फिर रचनात्मक लेखन ही क्यों न हो...भारत में साहित्यालोचना की जो विधा है, वह पश्चिमी आलोचना से किसी भी तरह कम नहीं है. भारत में आज जिस गति से पुस्तकों या पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है या फिर जिस तेज़ी से प्रकाशन संस्थानों का विकास हो रहा है, लगता है कि उसकी जानकारी नॉयपॉल को नहीं है.

अंत में हम यह कह सकते हैं कि *अ राइटर्स पीपल, वेज ऑफ लुकिंग एंड फीलिंग* एक ऐसे बुजुर्ग लेखक की किताब है, जो आत्मकेंद्रित हो गया है. आत्मश्लाघा में डूबा है और अपने पूर्वाग्रहों को अपने लेखों में थोप रहा है. हम कह सकते हैं कि पचहत्तर साल की उम्र में नायपॉल के लेखन में कुछ भी नया नहीं है और न ही वह कुछ नया समझते हैं और वे सारी चीज़ें भूल चुके हैं जिन्हें वह कभी समझते थे. विलियम डेलरिंपल के शब्दों में अगर कहें तो एक लेखक के रूप में नायपॉल का अंत हो चुका है. जितना ज़्यादा वह अपने अनुभवों के बारे में लिखते हैं, उनकी कलम उतनी ही नपुंसक होती जाती है. इस किताब को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि नायपॉल के लेखन से बुद्धिमत्ता, गर्मजोशी और ह्यूमर तो ग़ायब हो ही गए हैं, दया और करुणा का जो स्थावी भाव नायपॉल के गद्य की ताक़त होती थी, वह भी ख़त्म हो गई है. बच गया है तो सिर्फ़ पोर्ट ऑफ स्पेन के एक महान लेखक का बुढ़भस.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

संख्या चार की है बड़ी महत्ता

व्यालोक

सनातन धर्म में संख्या और अंकों का बड़ा महत्व है. ख़ासकर अंक चार का तो प्रभाव हम सनातन धर्म के किसी भी आयाम में देख सकते हैं. शुरुआत के लिए तो हम इंसानी जीवन की ही चर्चा कर सकते हैं. सनातन धर्म की मान्यता के मुताबिक औसत तौर पर इंसान की कुल ज़िंदगी (लाइफस्पैन) 100 वर्षों की होती है. इस पूरे जीवन में उसे चार आश्रमों का निर्वाह करना होता है, जिनमें से हरेक की अवधि लगभग 25 वर्षों की होती है. जीवनकाल का यह विभाजन कार्यक्षमता बढ़ाने, जीवन को व्यवस्थित करने और मनुष्य के अपने धर्म को पूरा करते हुए आख़िरकार उस परम सत्ता, परमात्मा से लौ लगाने के लिए ही किया गया है.

सनातन धर्म के मुताबिक जीवन के शुरुआती 25 वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम के होते हैं. इस अवधि में इंसान पढ़ाई–लिखाई करता है, रोज़गार की तैयारी करता है या संक्षेप में कहें तो आनेवाले आश्रम की तैयारी करता है. पुरातन काल में गुरुकुलों में जाकर विद्या और विधा अर्जित करने की परंपरा थी. इसी वजह से इसे गुरुकुल–आश्रम भी कहते हैं. अब मौजूदा दौर में तो यह व्यवस्था कालबाह्य हो चुकी है, लेकिन अब इसे स्कूल और कॉलेज के दौर से जोड़कर देख सकते हैं. इन 25 वर्षों में इंसान हरेक तरह से अपनी आगामी ज़िंदगी और चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार होता है. जीवन का दूसरा चरण गृहस्थ आश्रम का होता है. इसकी अवधि 25 वर्ष से 50 वर्ष तक मानी जाती है.

इस चरण का सीधा मतलब यह है कि इंसान अपनी गृहस्थी में रमता है. शादी कर वह अपने सामाजिक और पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करता है. सनातन धर्म का तीसरा आश्रम वानप्रस्थ को माना जाता है. इस दौर तक व्यक्ति अपनी सामाजिक और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को पूरा कर चुका होता है. सनातनी 50 वर्ष के बाद इहलोक की चिंता छोड़ कर परलोक की तरफ उन्मुख होता है. अपने आध्यात्मिक जीवन की तैयारी शुरू करता है. इसमें ईश्वर का चिंतन, गुरु के पास बैठकर आध्यात्मिक चर्चा और परम तत्व, परम सत्ता से अपनी लौ लगाता है. सनातन धर्म में जीवन का आख़िरी आश्रम संन्यास को माना गया है. इस अवस्था में व्यक्ति सारे संसार को त्याग कर एकांतसेवी हो जाता है. राग–विराग से परे यह अवस्था वीतराग की होती है. इस आश्रम में व्यक्ति पहले तो वन की ओर चला जाता था, किंतु मौजूदा दौर में संसार में रहकर भी उससे परे, उससे अलग होने की कोशिश की जा सकती है, ठीक कमल के पत्र की तरह–कमलपत्र विभांबसा.

आश्रमों के अलावा सनातन धर्म में व्यक्ति के ऊपर चार तरह के ऋण भी माने गए हैं. ये व्यक्ति के सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत ऋण होते हैं, जिन्हें पूरा कर ही व्यक्ति को अपने उत्तरदायित्वों से मुक्ति मिलती है. इनमें पहला ऋण देव ऋण माना जाता है. इसके लिए इंसान को पढ़ाई और विद्या पाकर ही इस ऋण को चुका सकता है. कुल मिलाकर देवताओं का ऋण तभी पूरा माना जाता है, जब आप अपनी प्रारंभिक अवस्था में आगे वाले जीवन की तैयारी कर लेते हैं.

दूसरा ऋण पितृ ऋण कहा जाता है. इसका निपटारा तभी हो पाता है, जब व्यक्ति शादी कर जीवन के चक्र को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दे, यानी समाज में परिवार के चक्र को कायम रखे.

तीसरा ऋण मातृ ऋण होता है, जो मां की सेवा से संबंधित है. आपने मां की जितनी सेवा ली है, उसे वापस करने के बाद ही आप मां के ऋण से मुक्त होते हैं. चौथा और अंतिम ऋण ऋषि–ऋण है, जिसका संबंध अध्ययन और अध्यापन से है. आपने जितना भी ज्ञान समाज से या गुरुओं से पाया है, उसे वापस समाज को लौटाए बिना इस ऋण से मुक्ति नहीं मिलती.

सनातन धर्म में चार आश्रमों और चार ऋणों के अलावा चार वर्ण भी इसी तरह हैं. ये चार वर्ण पूरी तरह पेशागत आधार पर बनाए गए थे, यानी काम के आधार पर ही व्यक्ति का वर्ण आंका जाता था. आज भले ही इसने जाति–व्यवस्था का गर्हित और दूषित स्वरूप ले लिया है, किंतु उसकी शुरुआत के पीछे काम और पेशा ही आधार था. इस पर विस्तार से चर्चा फिर कभी.

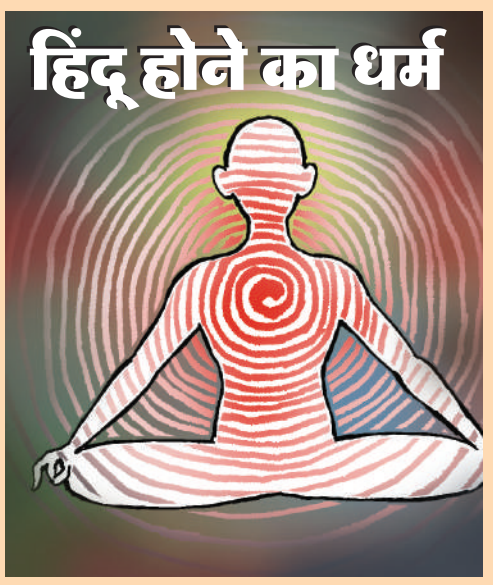

ठीक इसी तरह सनातन धर्म के चार पुरुषार्थ भी माने गए हैं. ये क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं. धर्म को भी पुरुषार्थ माना गया है, क्योंकि मनुष्य को इसके रास्ते पर चल कर ही सफलता मिलती है. दूसरा पुरुषार्थ अर्थ है, जिसके अंतर्गत जीविकोपार्जन और धन का संग्रहण किया जाता है. तीसरा पुरुषार्थ काम है. इसके अंतर्गत इंसान शादी कर अपनी वंशबेल को आगे बढ़ाने का काम करता है. अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष को माना गया है. इसके तहत इंसान अपनी दुनियावी आवश्यकताओं और कर्तव्य को पूरा कर ईश चिंतन और परम तत्व के मनन की और प्रवृत्त होता है.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह लेखक और सूफ़ी की ज़िंदगी में अलग–अलग लोग आए और उन्होंने उनकी ज़िंदगियों का रास्ता बदल दिया...

मुसलमान

आबिद सुरती

न जाने कितने टैक्सी ड्राइवर यहां लुटे हैं. उनको लूटने का तरीका एकदम सरल है. मीटर चुकाने के पूरे पैसे नहीं हैं. अभी ऊपर से ला देता हूं. टैक्सी ड्राइवर से भोलेपन के साथ कहकर मकान के एक प्रवेशद्वार में से दाख़िल होना और दूसरे प्रवेश से कावा काटकर शराफ़त से चलते बनना.

अज़ीज़ दिलीप ने सब कुछ विचारकर ही इसमें घर लिया था. उसे इस इलाक़े में जीना था. यहीं उसे अपने साम्राज्य की नींव डालनी थी. अपने अस्तित्व को भी टिकाए रखना था. अभी तक वह जाफ़र टाइट को ललकारने जितनी ताक़त नहीं जुटा पाया था. कभी वह पीकर आता और जाफ़र टाइट से सामना हो जाता तो वह अज़ीज़ दिलीप को सीढ़ियों पर ही फटकारने लगता, साले फिर कभी पीकर रात में शोर मचाया तो तेरी टांग तोड़कर हाथ में रख दूंगा.

वह चुपचाप सह लेता, मार भी और धमकी भी. कुछ सालों तक यह क्रम चला और फिर अब्दुल रहमान काफ़रिया की मृत्यु हो गई. अब दिलीप अज़ीज़ की जांघों में ज़ोर आया अब तक उसने अपनी जड़ें ज़मीन में काफ़ी गहराई तक उतार ली थीं, अपनी नींव मज़बूत कर ली थी. शराब के तीन–तीन अड्डों का वह मालिक बन गया था. उसका एक अड्डा मुंडागली में था, तो दूसरा भीमपुरा, न्यू मॉडल हाई स्कूल के पीछे मैदान में, तीसरा डोंगरी मार्केट में स्थित चिंदीगली में था. उसके हाथ के नीचे बीस छोकरे (सोलह वर्ष के आसपास की उमर के) काम करते थे.

जाफ़र टाइट समझ गया कि अब उसके दिन लद गए हैं. अज़ीज़ दिलीप की गर्दन पकड़कर उसे झकझोरना तो दूर रहा, अब उसके रास्ते में खड़ा होना भी सुरक्षित नहीं था. इसलिए वह शत्रु पर वार करने का मौक़ा तलाशने लगा. उसे मालूम हुआ कि आधी रात के बाद शराब की बोतलों से भरी एक ट्रक आती है और मुंडागली में माल उतारती है. उसने सोच लिया कि यह माल अज़ीज़ दिलीप का होगा.

उसी दिन उसने शिकायत लिखकर सीधे गृह–विभाग को भेजी. गृह–विभाग ने यह शिकायत बोरीबंदर स्थित ए.सी.बी. के चीफ भेसाड़िया की टेबल परपहुंचा दी. भेसाड़िया ने यह शिकायत पढ़ी और अपने तीन चुनिंदा आदमियों को मुंडागली के तीनों मुहानों पर तैनात कर दिया. रात के दस बजे थे. इक़बाल दसवीं कक्षा की तैयारी कर रहा था. वह इतिहास के प्रश्नोत्तर रट रहा था. कल से परीक्षाएं शुरू होने वाली थीं. उसके दोनों भाई ब्यालू (खाना) खाकर सो गए थे. मां अभी भी जागती बैठी थी. सोने से पहले वह दुआओं का मजमुआ पढ़ रही थी. करीब एक घंटे के बाद वह भी सो गई. इक़बाल ने दीवार–घड़ी में देखा. रात के सवा ग्यारह हुए थे. उसकी एक आंख किताब पर थी, दूसरी समय पर. आधी रात के बाद लॉरी माल लेकर आने वाली थी. शाम को उसने अपनी गैंग को छोकरों को सूचना दे दी थी. आधी रात को वे मुंडागली के नुक्कड़ पर हाज़िर होने वाले थे. रात के बारह बजे. मुंडागली स्थित अज़ीज़ दिलीप के अड्डे में लोगों की भीड़ बढ़ रही थी. रात के सन्नाटे में उसमें से उठती ठहाकों की आवाज़ें इक़बाल तक पहुंचते–पहुंचते दब जाती थीं. गली के तीनों मुहानों पर सादे कपड़ों में चौकन्नी नज़र रखते सी.आई.डी. के आदमी माहौल में ऐसे घुल–मिल गए थे, जैसे अंधेरे में हब्शी छिपे हों. केवल उनकी आंखें चमक रही थी.

दूर से आती लॉरी के हॉर्न की आवाज़ कान से टकराते ही इक़बाल ने आख़िरी बार घड़ी की ओर देखा.

रात के दो बजे थे. इतिहास की पुस्तक बस्ते में डालकर उसने बस्ता बंद किया और खड़ा हो गया. उसे नीचे जाने की ज़रूरत नहीं थी. उसके छोकरे मंज गए थे. (सूफ़ी इन लड़कों के लिए टपोरी शब्द का इस्तेमाल करता है) लॉरी पालखी मुहल्ले में आगे बढ़ी और मुंडागली के पहले मोड़ पर आकर खड़ी हो गई. सी.आई.डी. के आदमी सावधान हो गए. उन्होंने देखा कि लॉरी में से बोरियां फटाफट उतर रही थीं. पंद्रह–सोलह वर्ष के छरहरे, किंतु मज़बूत काठी के लड़के कंधे पर बोरियां लादकर मुंडागली के अंधेरे में ग़ायब हो जाते थे. वापस लौटते थे, फिर बोरियां उठाते थे और एक–एक करके गली में दौड़ते जाते थे. गली में माल कहां उतारा जा रहा है, यह जानना सी.आई.डी. के आदमियों के लिए सचमुच मुश्किल काम था.

इक़बाल ने दीवार–घड़ी में देखा. रात के सवा ग्यारह हुए थे. उसकी एक आंख किताब पर थी, दूसरी समय पर. आधी रात के बाद लॉरी माल लेकर आने वाली थी. शाम को उसने अपनी गैंग को छोकरों को सूचना दे दी थी.

खुलकर गली में दाख़िल होना मुमकिन नहीं था. यदि पहचान लिए जाएं तो जान का ख़तरा था. वेलसी लालजी बिल्डिंग ठगों के लिए वरदान थी तो मुंडागली खूनियों के लिए. किसी का ख़ून करके हत्यारा इस गली की भूल–भुलैया में घुस जाता तो उसे खोज पाना पुलिसवालों के लिए भी मुश्किल है.

दूसरे दिन तीनों सी.आई.डी. इंस्पेक्टर भेसाड़िया के केबिन में हाज़िर हुए. लॉरी आई थी क्या? उसने पहला प्रश्न किया. तीनों ने हां में सिर हिलाया. कितनी बोरियां उतरीं? पचास से अधिक. एक ने उत्तर दिया. किसका माल था? अज़ीज़ दिलीप का. यह मुमकिन नहीं. तीनों सी.आई.डी. के आदमियों के चेहरों पर सरसरी नज़र डालते हुए इंस्पेक्टर भेसाड़िया बोल उठा. साहब, शिकायत में यही बताया गया है. भेसाड़िया बेहूदी दलील सुनकर गरजा. और तुम लोगों ने मान लिया? पर हमने अपनी नज़रों से बोरियां अज़ीज़ दिलीप के अड्डे की ओर जाते हुए देखी थीं. वह मूंछों में हंसा. बेटा, फिर नरम आवाज़ में बोला, तुम लोगों ने बोरियां अड्डे की ओर जाती हुई देखीं, उन्हें अड्डे में जाते हुए नहीं देखा है, सही? दूसरे सी.आई.डी. के आदमी ने भूल स्वीकारते हुए पूछा– साहब, आपको क्यों शंका हुई?

शराब के उस अड्डे को मैंने देखा है. उसमें पचास तो क्या, पांच–दस बोरियां भी मुश्किल से समा सकती हैं. दूसरे दिन से फिर तीनों मुहानों पर पहरे लगा दिए गए. जब तक पूरा यक़ीन न हो जाए, तब तक भेसाड़िया कोई क़दम नहीं उठाना चाहता था. दूसरे उसे माल पकड़ने के बजाय मालिक को गिरफ़्त में लेने में ज़्यादा दिलचस्पी थी. इसके लिए धैर्य चाहिए, और इंस्पेक्टर भेसाड़िया में धैर्य की कमी नहीं थी. दो रातें सी.आई.डी. वालों ने झख मारी और तीसरी रात को उनके जागरण का फल मिला. फिर एक बार माल लेकर लॉरी पालखी मुहल्ले में दाख़िल हुई. वही आधी रात के बाद का समय. वही मुंडागली का नाका. वही क्रम. इक़बाल पशोपेश में था. उसकी परेशानी यह थी कि दो दिन पहले आया माल रफा–दफा नहीं हुआ था. पचास बोरियां अभी भी जैसी की तैसी पड़ी थीं और दूसरीपचास बोरियां लेकर लॉरी आ पहुंची थी. वह फ़ौरन अंधेरी गली में उतर आया. बोरियां लिए दौड़ कर आते लड़कों को उसने मकान के प्रवेशद्वार पर रोका और ख़ुद चंदू के पास गया. चौड़ी छाती और पहलवानों जैसा जिस्म वाला चंदू दिलीप अज़ीज़ का दाहिना हाथ था, मुंडागली के शराबख़ाने की देख–रेख की ज़िम्मेदारी उसी की थी. इक़बाल उसके संपर्क में मोगल के ज़रिए आया था. (उन दिनों इक़बाल मोगल की बोतलों की डिलीवरी का काम करता था.) इक़बाल का वह दोस्त बन गया था. इक़बाल के लिए उसके दिल में हमदर्दी भी थी.

यार चंदू! इक़बाल ने उससे मिन्नत की, मेरा माल आया है. बोरियां घर में उतारूंगा तो हम सभी को बाहर गलियारे में सोना पड़ेगा. कितना माल है ? कम से कम पचास बोरियां तो होंगी ही. किस शराब की? दस बोरियां फेनी की... उसको रोककर चंदू बीच में बोला, फेनी की मुझे यहीं ज़रूरत है. वह मैं रख लेता हूं. और बाक़ी स्कॉच, रम तथा बॉडका है. इक़बाल ने अपना अधूरा वाक्य पूरा किया. उसे मैं भीमपुरा के अड्डे पर भिजवा देता हूं. जसबीर सिंह से कहना, दो दिन बाद आकर अपना हिसाब ले जाए. और कुछ? समस्या का समाधान हो गया. अब्बासी मंज़िल के नीचे कंधों पर बोरियां लादे कतारबद्ध खड़े लड़कों को उसने नया आदेश दिया, चौकड़ी के निशान वाली दस बोरियां अड्डे के बाहर खड़े ठेले पर चढ़ाओ. थोड़ी देर के लिए रुकी हुई कार्यवाही फिर शुरू हो गई. लॉरी में से बोरियां उतरने लगीं. फिर एक बार सी.आई.डी. वालों के लिए समस्या खड़ी हो गई–गली में घुसा जाए कि नहीं. न घुसें तो आज का फेरा भी बेकार जाएगा. अंत में एक सी.आई.डी. इंस्पेक्टर ने बीड़ा उठाया और हिम्मत करके गली में घुस गया. परछाईं की तरह सरकता हुआ वह अंधेरे की आड़ में अड्डे से कुछ फ़ासले पर आ खड़ा हुआ. यहां से वह सब कुछ देख सकता था. पहली नज़र में उसने जो कुछ देखा, उसी को उसने सच मान लिया. उस समय फैनी की दस बोरियां शराब के अड्डे में रखी जा रही थीं. ज़्यादा देर वहां रुकने का मतलब नहीं था. ज़रूरत भी नहीं थी. वह वापस सही–सलामत बाहर निकल आया. इंस्पेक्टर भेसाड़िया गच्चा खा गया. सामने खड़े तीन सी.आई.डी. में से एक ने विश्वास के साथ बताया था–साहब, इस बार मैंने ख़ुद अपनी आंखों से देखा है. मलबारी लड़के बोरियां ला रहे थे और चंदू अपने शराब के अड्डे में उन्हें रखवा रहा था.

इंस्पेक्टर भेसाड़िया को इस मसले पर इत्मीनान से सोचना ज़रूरी लगा. गहराई से विचारने के बाद उसने निष्कर्ष निकाला. उसने जो कुछ सुना था, अगर वह सच है तो इसका अर्थ यह हुआ कि शराब के अड्डे के नीचे माल रखने के लिए कोई तहख़ाना हो तो आश्चर्य नहीं. उसने अज़ीज़ दिलीप के अड्डे पर छापा मारने का फैसला किया.

(अगले अंक में जारी)

गैजेट रखे बच्चे का ध्यान

आजकल सिंगल फैमिली का दौर है. सिंगल फैमिली में महिला को सबसे अधिक परेशानी तब आती है, जब उसे अपने नन्हें-मुन्ने को घर में बिना किसी निगरानी के छोड़कर दूसरे काम में लगना पड़े या पड़ोस में जाना पड़े. स्वान कंपनी ने ऐसी माओं की परेशानी को अब कम कर दिया है. कंपनी ने घर पर अकेले रहने वाली महिला के लिए छोटे बच्चे का ख़याल रखने वाला गैजेट लांच किया है. किचन में काम करते वक्त ड्राइंग रूम में खेल रहा नन्हा कब अपने आप को नुकसान पहुंचा ले यह कहना कठिन है. ऐसे में गार्जियन एंजेल बेबी मॉनिटरिंग गैजेट बड़े काम की चीज़ है. दरअसल गार्जियन एंजेल गैजेट से मांएं घर के किसी कोने से दूसरे कमरे में खेल रहे छोटे बच्चे पर नज़र रख सकती हैं. यह एक वायरलेस मॉनिटरिंग किट है जो रेडियो ट्रांसमीटर से 50 मीटर के रेंज में काम करता है. यह एक ऑडियो-वीडियो डिवाइस है, जिसमें एक ढाई इंच का एलसीडी स्क्रीन, कैमरा, रिसीवर और इनबिल्ट माइक्रोफोन होता है. दूसरे कमरे में खेल रहे बेबी की आवाज़ सुनकर उसे लगातार देखते रहने से किसी भी आकस्मिक दुर्घटना

से बचा जा सकता है. यह गैजेट बिजली से चलने के अलावा बैटरी से भी चलता है. बेबी के खेलने वाले कमरे में अंधेरा होने पर भी दो मीटर की दूरी तक के दृश्य स्क्रीन पर देखे जा सकते हैं. इसे इंस्टॉल कर हैंडल करना काफी आसान है. एक वर्ष की वारंटी वाले इस मदर हेल्पिंग गैजेट की क़ीमत 12999 रुपए है. यह रक़म निश्चित तौर पर आपके बच्चे को अनदेखी में होने वाले नुकसान से कम ही है. तो क्या आप बेबी की सुरक्षा के लिए घर में एक गैजेट लाने को तैयार हैं? यह गैजेट सिंगल मॉम के लिए भी वरदान से कम नहीं है.

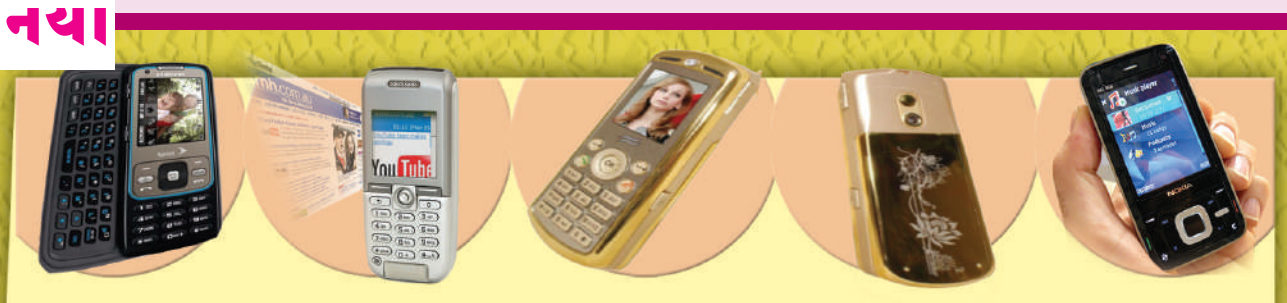

मोबाइल से हो गई है भाषा की कायापलट

मोबाइल फोन ने क्रांति की तरह हमारे जीवन में प्रवेश किया और बहुत जल्द हमारी व्यस्त दिनचर्या में अपनी जगह बना ली. इसका असर किस तरह से हमारी ज़िंदगी पर पड़ा है, यह कहना कठिन नहीं होगा. आजकल खाने, पहनने, रहने जैसी ही बुनियादी ज़रूरत मोबाइल की हो गई है.

निस्संदेह यह संपर्क का बेहतरीन जरिया है, पर इसका ख़ास असर हमारी भाषा और जीवनशैली पर भी देखने को मिल रहा है. आजकल के फोन केवल कॉल करने और कॉल रिसीव करने के लिए नहीं रह गए हैं. बल्कि ये फोन मल्टीमीडिया सेट हो गए हैं जिसमें इंटरनेट, टेक्स्ट मैसेज, वेबसाइट सर्फिंग, कॉल रिकॉर्ड जैसी हाई-टेक चीज़ें भी होती हैं.

एसएमएस में इस्तेमाल करते हुए *वास्स अप?, हाउज लाइफ?, टी.सी, विल सी लेटर* और कई ऐसे शब्दों के लिए पूरे शब्द का इस्तेमाल ना करके उसे छोटा करके लिखते हैं. जैसे प्लीज़ शब्द को लिखने के लिए पीएलज़ेड लिखते है, थैंक्यू को टीएचएक्स, गुड मार्निंग को जीएम, गुड नाइट को जीएन, इत्यादि शब्द अब छोटे होकर रह गए हैं. यह भाषा अब इतनी आम हो गई है कि लोग अपने प्रोफेशनल डॉक्यूमेंट पर भी लिख देते हैं. इससे सभ्य भाषा की टांग तोड़ने जैसी बात हो गई है. भाषा का यह असर सबसे अधिक किशोरों के ऊपर दिख रहा है, जिनका अधिकतर वक्त अपने मोबाइल के साथ गिट-पिट करने में ही बीतता है.

आजकल के फोन केवल कॉल करने और कॉल रिसीव करने के लिए नहीं रह गए हैं. बल्कि ये फोन मल्टीमीडिया सेट हो गए हैं जिसमें इंटरनेट, टेक्स्ट मैसेज, वेबसाइट सर्फिंग, कॉल रिकॉर्ड जैसी हाई-टेक चीज़ें होती हैं.

अब तो फॉर्मल बातचीत में भी ये शब्द सुनाई देने लगे हैं. कभी-कभी तो एक्ज़ाम पेपर्स में भी ऐसी ही भाषा दिख जाती है. वैसे भाषा का यह विकास यंगस्टर्स यदि मोबाइल तक ही सीमित रखें तब तक तो ठीक है, पर उसके आगे इसका इस्तेमाल कई बार हमारे लिए तक़लीफ देने वाला भी हो सकता है.

तकिया सुनाएगा लोरी

क्या ख़ूब हो अगर तकिया मां की याद दिलाए और लोरियां सुनाए! ठीक वैसे ही, जैसे मां की गोद में नींद से बोझिल पलकें केवल लोरियों के लिए ही खुली रहती थीं और मीठी-मीठी लोरियां कानों में पड़ते ही हम निंदिया के गोद में समा जाते थे. तकनीक के सहारे ही सही पर मां के गोद का अहसास प्रतिदिन यदि एक बार भी हो जाए तो पूरे दिन की थकान मिट जाएगी.

ज़ी हां, बाज़ार में एक ऐसा तकिया उपलब्ध है जिसे किसी भी म्यूजिक सोर्स के साथ 3.5 मीमी स्टीरीयो प्लग के जरिए जोड़ देने से वह एक स्पीकर डिवाइस बन जाता है. देखने में बिल्कुल साधारण तकिए जैसा दिखने वाले इस स्पेशल तकिए में इनबिल्ट स्पीकर होते हैं जिसे चलाने के लिए बैटरी की ज़रूरत नहीं पड़ती.

यह तकिया उन लोगों के लिए काफी लाभप्रद है जिन्हें बैकग्राउंड की आवाज़ में ही सोने की आदत होती है या जो नींद न आने की समस्या से जूझ रहे होते हैं और उन्हें नींद लाने के लिए हल्के संगीत की ज़रूरत होती है. लंबे सफर पर ले जाने के लिए भी यह बहुत अच्छी चीज़ है. किसी विदेशी भाषा या ऑडियो बुक को सुनकर सीखने के लिए भी यह तकिया काफी मददगार साबित हो सकता है. आमतौर पर सफर में रात होने पर यात्रियों की सुविधा के लिए बत्ती बुझा दी जाती है, ऐसे में यह संगीतमय तकिया काफी अच्छा हमसफर बन सकता है. इसके अलावा आप अपनी तरह से इस तकिए का स्थान अपने जीवन में तय कर सकते हैं. लोरियां सुनाने वाले इस तकिए का भार केवल 0.4 किलोग्राम है. आम तकिए की तरह इसमें फाइबर फीलिंग होने की वजह से इससे चुभन नहीं होती है.

घड़ी पर आए इनकमिंग कॉल

आमतौर पर घड़ियां समय देखने के लिए होती हैं, पर सोनी एरिकसन की एमबीडब्ल्यू-100 ब्लूटूथ वॉच में कई सारी सुविधाएं हैं. कलाई पर पहनने वाली इस घड़ी में ब्लूटूथ के साथ आपके फोन पर आने वाले कॉल के कॉलर का नाम और एसएमएस भेजने वाले का नाम भी दिखता है, जिसके लिए ज़रूरत है तो बस सोनी ऐरिकसन या नोकिया के ब्लूटूथ फोन की. इस घड़ी को सपोर्ट करने वाले फोन के साथ ऑटोपेयरिंग से जोड़ देने पर यह घड़ी कमाल का गैजेट बन जाता है.

फोन साइलेंट मोड पर हो तब भी कॉल या एसएमएस की डिस्प्ले घड़ी में हो जाती है. इस घड़ी के साथ चार्जिंग केबल होता है, जिसके एक छोर को घड़ी के क्लिप से जोड़ते हैं और दूसरे छोर को चार्जिंग के लिए सॉकेट में डालते हैं.

इसकी बैटरी एक घंटे दस मिनट में फुल चार्ज हो जाती है. काले और सिल्वर रंग में उपलब्ध इस मल्टीपरपस घड़ी की वारंटी कुल एक साल की है. इसकी क़ीमत बीस हज़ार रुपए है.

स्पाइस का नया एस-5330 फ्लिप फोन

मोबाइल फोन का बाज़ार दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है. लोगों में ख़ासकर युवाओं में मोबाइल के नए मॉडल्स की उत्युकता में लगातार बढोतरी हो रही है. भारतीय वयस्क उपभोक्ताओं और यंगस्टर्स दोनों की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए स्पाइस ने अपने मोबाइल फोन के नए मॉडल एस-5330 को लांच किया है. इसका स्टाइलिश स्लिम, फ्लिप फोन हिंदुस्तानियों के लिए ख़ास तौर पर डिजाइन किया गया है.

इसमें एमपी3 प्लेयर, एफएम रिकॉर्डिंग, 3 जीबी एक्सपेंडेबल मेमोरी, मोबाइल ट्रैकर और जीपीआरएस जैसे फीचर्स के साथ ख़ास भारतीय कैलेंडर है. और इसके साथ ही है भारतीय कैलेंडर, जिसमें पंचांग के हिसाब से साप्ताहिक और मासिक पर्व व त्योहारों का विवरण है. साथ ही परंपरागत तिथियों की जानकारी और चंद्रमा की स्थिति की जानकारी भी अपलोडेड है. इन जानकारियों से न केवल ख़ुद लाभ उठाया जा सकता है बल्कि फोन में फीड की हुई इन महत्वपूर्ण तिथियों की जानकारी, त्योहारों के दिनों की सूचना एसएमएस द्वारा अपने प्रियजनों को भी भेज सकते हैं. इस फोन का एमपी3 प्लेयर सभी म्यूजिक फॉरमेट को सपोर्ट करता है जिससे कभी भी गाने सुनने के लिए किसी और डिवाइस की ज़रूरत नहीं पड़ेगी. म्यूजिक के अलग-अलग फ्लेवर का मज़ा लेने के लिए इसमें आठ इक्वेलाइजर हैं जिन्हें अपनी पसंद के अनुसार सेट कर सकते हैं. रिपीट ऑप्शन के साथ इसमें शफल का ऑप्शन भी है. इस फोन में एफएम रिकॉर्डिंग के साथ अपने फेवरिट रेडियो जॉकी की आवाज़ से जागने के लिए एफएम अलार्म की सुविधा भी है. सिक्योरिटी के लिहाज़ से देखा जाए तो इस फोन में ब्लैक लिस्ट नंबर, व्हाइट लिस्ट नंबर के साथ पैनिक बटन, फोन बुक के कॉन्टैक्ट बैक-अप भी हैं. फोन में वीएएस फंक्सन पहले से ही लोडेड है जिससे लाइव क्रिकेट अपडेट की सुविधा, और रॉयटर्स से फ्री न्यूज़ अलर्ट, वेदर फॉरकास्ट अलर्ट की सुविधा का लाभ उठा सकते हैं. इतना ही नहीं, इन बेहतरीन सुविधाओं के साथ स्पाइस एस-5330 फोन में इबिबो (सोशल नेटवर्किंग सर्विस), ई-मेल टू एसएमएस, एम गुरुजी के सर्विसेज भी हैं. स्पाइस का यह चमचमाता फोन आपके च्वाइस और पर्सनैलिटी का हिस्सा केवल 2799 रुपए में बन सकता है. इसके इतने सारे गुण और भारतीय कैलेंडर के स्पेशल फीचर को देखकर इसकी क़ीमत अधिक नहीं लगती है.

पर्सनल कंप्यूटर हथेली में

कितना अच्छा हो यदि कंप्यूटर पर हाई-टेक इंटरनेट सर्फिंग कहीं भी, कभी भी आसानी से की जा सके. बिना किसी वायर, बिना किसी झंझट के वायरलेस कंप्यूटर पर काम करना टेंशन फ्री और मज़ेदार है. ब्लू रेडियो की ओर से ऐसा ही कंप्यूटर लांच किया गया है जो ब्लुटुथ, वाई-फाई, जीपीएस और 3.5 नेटवर्क को सपोर्ट करता है. इसके जरिए यूजर्स अपने काम के लिए, मनोरंजन के लिए या अपने दोस्तों से संपर्क में रहने के लिए इंटरनेट का इस्तेमाल कर सकते हैं. वायरलेस इंटरनेट दरअसल पर्सनल इंटरनेट हमेशा इस्तेमाल करने वालों के लिए काफी फायदेमंद चीज़ है. इसमें 15 इंच का नोटबुक के साइज का स्क्रीन ख़ास है.

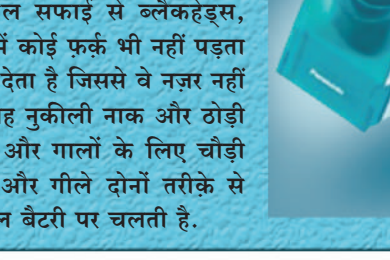

यह कलर लिक्विड क्रिस्टल माइक्रो डिसप्ले स्क्रीन है, जिसमें वीडियो को बेस्ट क्वालिटी में देखा जा सकता है. ख़ूबसूरत स्क्रीन के अलावा इसका नन्हा-मुन्ना हथेली भर का साइज भी आकर्षित करता है. छोटे साइज का यह कंप्यूटर पोर्टेबल तो है ही, कंफर्टेबल भी है. मात्र 30 ग्राम के इस नन्हें कंप्यूटर में एचडी और स्टैंडर्ड वेब पेज भी देखना काफी आसान है. यह छोटा सा कंप्यूटर केवल एक वाट का पावर ख़र्च कर जाने कितने अच्छे विकल्प हमारे सामने रखता है. आम यूजर्स के लिए यह ख़ास बात होगी कि सार्वजनिक बनाने से पहले इसे केवल मिलिट्री और इंडस्ट्रीयल क्षेत्र के इस्तेमाल के लिए सीमित रखा गया था. अब इसे कमर्शियल तौर पर मार्केट में उतारा गया है, जिससे आम लोग और फ्रेंड्स-फ्रीकी यंगस्टर्स इसका भरपूर फायदा उठा सकें. आनेवाले दिनों में कंपनी यह कोशिश कर रही है कि मीनी कंप्यूटर के साथ मोबाइल के फीचर्स जोड़ दिए जाएं, जिससे लोग इसका अधिक से अधिक लाभ उठा सकें.

स्किन केयर करे गैजेट

देखने में आ रहा है कि समाज के हर पहलू में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने के साथ वे गैजेट प्रेमी भी हो गई हैं. वे भी अब टेक-सैवी हो गई हैं, और अब स्किन केयर के लिए गैजेट आने से तो जैसे मन की मुराद पूरी हो गई हो. ब्लैक हेड्स और तैलीय त्वचा पर जमी हुई चिकनाई हटाने में रोज़मर्रा की होने वाली परेशानी से अब छुटकारा दिलाएगा पैनासोनिक इएच 2511ए पोर क्लीनर. अपने बेस्ट फीचर्स के साथ यह साइड इफेक्ट फ्री भी है. इसकी क़ीमत 2700 रुपए है और एक वर्ष की वारंटी भी मिलती है. पैनासोनिक का यह गैजेट कॉर्डलेस, रीचार्जेबल और पोर्टेबल है.

त्वचा को बिना नुकसान पहुंचाए यह बिल्कुल सफाई से ब्लैकहेड्स, व्हाइटहेडस को हटाता है. इससे त्वचा के कसाव में कोई फ़र्क़ भी नहीं पड़ता है, बल्कि त्वचा के बड़े छिद्रों को यह बंद भी कर देता है जिससे वे नज़र नहीं आते हैं. इसकी नोक घुमावदार होती है, जिससे यह नुकीली नाक और ठोड़ी के किनारों के लिए एकदम सटीक है तो ललाट और गालों के लिए चौड़ी पट्टी वाली नोक बिल्कुल दुरुस्त है. यह सूखे और गीले दोनों तरीक़े से इस्तेमाल की जा सकती है. यह इनबिल्ट रिचार्जेबल बैटरी पर चलती है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

एशियाड में शामिल हो गया क्रिकेट

जिन लोगों को आईपीएल की सफलता को लेकर संदेह रहा हो, वे इसे दूर कर लें. यह आईपीएल का जादू ही है कि ट्वेंटी-20 क्रिकेट एशियाई खेलों में शामिल कर लिया गया है. अगले साल चीन के गुआंझाओ में होने वाले एशियाई खेलों में क्रिकेट भी होगा. पहली बार एशियाई खेलों का हिस्सा बने क्रिकेट में भारत और पाकिस्तान अपनी-अपनी मजबूत टीमें भेजेंगे.

एशिया कप में कुल आठ टीमें भाग लेंगी. इनमें मेजबान चीन के अलावा भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका और बांग्लादेश को मुख्य दौर में पहले ही प्रवेश दे दिया गया है. बाक़ी तीन टीमों के लिए क्वालीफाइंग मुक़ाबले खेले जाएंगे. इतना ही नहीं, पुरुष व महिला दोनों वर्गों में मुक़ाबले होंगे.

पिछले दिनों इसकी घोषणा करते हुए एशियाई ओलंपिक परिषद (ओसीए) के प्रमुख शेख अहमद अल सबाह ने कहा कि एशिया में क्रिकेट खेलने वाले देशों में भारत और पाकिस्तान मुख्य देश हैं. इसलिए दोनों देश अपनी-अपनी मजबूत टीमों के साथ आएंगे, क्योंकि यह बड़ा मुक़ाबला होगा. उनके मुताबिक, एशिया में चार टेस्ट खेलने वाले देशों ने पहले ही मजबूत टीम भेजने पर सहमति जता दी है. ग़ौरतलब कि चीन के शहर गुआंझाओ में एशियाई खेल 12 से 27 नवंबर तक खेले जाएंगे.

हालांकि इससे पहले कुआलालंपुर में 1998 में हुए राष्ट्रमंडल खेलों में क्रिकेट को शामिल किया गया था. राष्ट्रमंडल खेलों में क्रिकेट के शामिल होने का वह पहला और अब तक का आख़िरी मौका था. तब 16 टीमों के बीच 50-50 ओवरों वाले एकदिवसीय मैच हुए थे. इन 16 में से नौ टीमें टेस्ट मैच खेलने वाले देशों की थीं. कैरिबियाई द्वीपों की टीमों ने अलग-अलग होकर भाग लिया था, इसलिए वेस्ट इंडीज के नाम से संयुक्त टीम ने उसमें हिस्सा नहीं लिया था. वैसे इंग्लैंड ने भी इसमें भाग नहीं लिया था. उसने काउंटी मैचों के साथ तिथियों में टकराव को बहाना बनाया था.

एशियाई खेलों में क्रिकेट के शामिल होने से क्रिकेट प्रशंसकों में ख़ुशी की लहर दौड़ गई है. उन्हें अब उम्मीद है कि अगले साल दिल्ली में होने वाले राष्ट्रमंडल खेलों में भी क्रिकेट को फिर शामिल कर लिया जाएगा.

कुआलालंपुर राष्ट्रमंडल खेल के लिए आस्ट्रेलिया को छोड़ सबने दोयम दर्जे की टीमें भेजी थीं. अकेली आस्ट्रेलियाई टीम ही थी, जिसमें टेस्ट और एकदिवसीय खेलने वाले सारे स्टार थे. भारत ने तो बहुत ही कमज़ोर टीम भेजी थी.फाइनल आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका के बीच खेला गया था, जिसमें मजबूत टीम होते हुए भी आस्ट्रेलिया चार विकेट से पराजित हो गया और गोल्ड मेडल दक्षिण अफ्रीका ले गया.

बहरहाल, एशियाई खेलों में क्रिकेट के शामिल होने से क्रिकेट प्रशंसकों में ख़ुशी की लहर दौड़ गई है. उन्हें अब उम्मीद है कि अगले साल दिल्ली में होने वाले राष्ट्रमंडल खेलों में भी क्रिकेट को फिर शामिल कर लिया जाएगा. ग़ौरतलब है कि कई पूर्व क्रिकेटर तो इसे ओलंपिक तक में शामिल करने की मांग करते रहे हैं. स्टीव वॉ, गिलक्रिस्ट, ब्रायन लारा, स्टीफन फ्लेमिंग, नासिर हुसैन, माइक ऑथर्टन और सौरभ गांगुली आदि कई बार यह कह चुके हैं कि क्रिकेट को ओलंपिक खेलों में शामिल कर लिया जाना चाहिए.

वैसे इस पर लोगों को कोई आपत्ति भी नहीं है, लेकिन इसके मैचों में लगने वाला समय ही इसके आड़े आता रहा है. टेस्ट मैच पांच दिन में ख़त्म होता है, तो एकदिवसीय 50-50 ओवरों का मैच है. लेकिन क्रिकेट के नए अवतार यानी ट्वेंटी-20 ने इस समस्या से भी छुटकारा दिला दी है. यही कारण है कि इसे आसानी से 2010 के एशियाई खेलों में शामिल कर लिया गया. अब उम्मीद की जानी चाहिए कि राष्ट्रमंडल खेलों के बाद ओलंपिक में प्रवेश के लिए भी रास्ता खुल जाएगा.

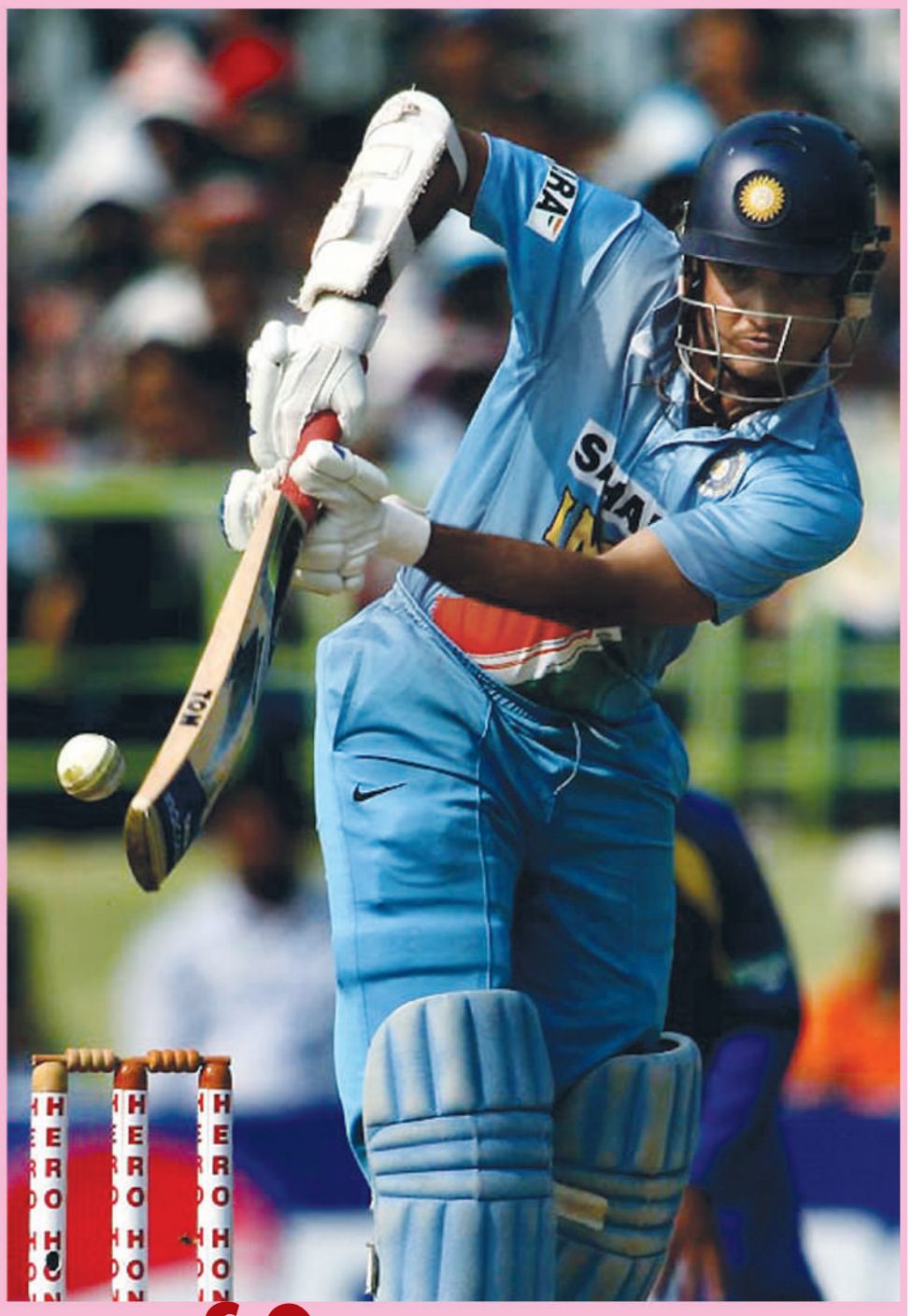

आईपीएल का अगला सीज़न नहीं खेलेंगे दादा

भारतीय क्रिकेट टीम के सफलतम कप्तान सौरभ गांगुली आईपीएल-3 में नहीं होंगे. ऐसा वह ख़ुद तो चाहते ही हैं, उनकी टीम यानी कोलकाता नाइट राइडर्स (केकेआर) के मालिक शाहरुख़ ख़ान भी चाहते हैं. एक तो दादा के खेल में अब वह बात नहीं रह गई है, दूसरे टीम में उनको लेकर विवाद जिस सीमा तक चला गया है उसमें यही एकमात्र विकल्प रह गया है. कहना न होगा कि गांगुली की जगह टीम में चार कप्तान बनाने की योजना को लेकर शुरू हुआ विवाद इस हद तक बढ़ गया कि टीम दो खेमे में बंट गई. विदेशी और भारतीय क्रिकेटरों के गुट साफ दिखने लगे. अगरकर को लेकर बॉलिंग कोच विशेल की नस्लीय टिप्पणी के बाद तो टीम में खेल भावना ही नहीं रह गई. इन सबका परिणाम यह रहा कि केकेआर सबसे फिसड्डी टीम साबित हो गई. वैसे इस विवाद की गाज कोच बुकैनन पर भी गिरेगी. केकेआर के सूत्र बताते हैं कि बुकैनन के नेतृत्व में कोचिंग स्टाफ के विदेशी सदस्य अपने आप को किंग ख़ान से भी बड़ा समझने लगे हैं. यह बात बॉलीवुड के बादशाह को जंच नहीं रही. लिहाजा, वह *पूरे घर का बदल डालूंगा* वाले अंदाज में आ गए हैं और उसी तरह के फैसले भी करने वाले हैं.

अगले सीज़न में केकेआर की कप्तानी आस्ट्रेलियाई कप्तान रिकी पोंटिंग को देने का फैसला लगभग ले लिया गया है. सूत्र बताते हैं कि पोटिंग की मदद के लिए कोच की भूमिका आस्ट्रेलिया के ही पूर्व क्रिकेटर स्टीव वॉ को सौंपने का मन भी उन्होंने बना लिया है. स्टीव वॉ को कोच बनाने से दो लाभ होंगे. एक तो बुकैनन की तरह भारी-भरकम कोचिंग स्टाफ की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, दूसरे स्टीव वॉ का कोलकाता के साथ भावनात्मक रिश्ता भी रहा है. वह वहां अक्सर आते-जाते रहते हैं और वहां के असहाय-बेसहारा बच्चों के लिए काम भी कर रहे हैं. इससे एक और महत्वपूर्ण काम भी हो जाएगा. वह यह कि स्टीव वॉ और पोटिंग की जोड़ी को देख दादा ख़ुद मैदान छोड़ देंगे. इस तरह आईपीएल के पहले सीजन में बनी टीम केकेआर में दूसरे सीजन में जो विवाद शुरू हुआ था, वह तीसरे सीजन में जाकर ख़त्म हो जाएगा.

शाहरुख़ ख़ान की फिल्म की तरह, जिसमें एक आरंभ होता है और फिर मध्य के बाद अंत.

बैडमिंटन में भारत की लंबी छलांग

बैडमिंटन में नई सनसनी सायना नेहवाल के नेतृत्व में भारत ने इतिहास रच दिया है. सायना के शानदार खेल से भारत पहली बार सुदीरमन कप विश्व टीम चैंपियनशिप के दूसरे ग्रुप में स्थान बना लिया है. चीन के गुआंगझू शहर में खेले गए ग्रुप-3 के प्ले ऑफ मुक़ाबले के अंतिम मैच में भारत ने बुल्गारिया को 3-0 से रौंद डाला. 1989 में शुरू हुई इस चैंपियनशिप में भारतीय टीम पहली बार इस मुकाम तक पहुंचने में सफल हुई है.

भारतीय शटलरों ने ग्रुप मुक़ाबलों में ऑस्ट्रेलिया को 4-1 और यूक्रेन व स्कॉटका को 5-0 के समान अंतर से हराया था. बुल्गारिया के ख़िलाफ़ भारत को पहली जीत एस.थॉमस और रूपेश कुमार की जोड़ी ने दिलाई. इन दोनों ने पुरुष युगल मुक़ाबले में ब्लादिमीर मेटोदीव व युलियन रिस्तोव का 21-13, 21-11 से हराया. भारतीय जोड़ी के शानदार खेल का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उन्होंने यह मुक़ाबला सिर्फ 28 मिनट में जीत लिया. निश्चय ही भारत की इस बढ़त को मजबूत करने की जिम्मेदारी महिला शटलर सायना नेहवाल के कंधों पर आई. दुनिया की दसवीं नंबर की भारतीय खिलाड़ी ने महिला एकल में लिंडा जेत्विरी को 21-14, 21-17 से हरा कर भारत की बढ़त 2-0 कर दी. पांच मैचों के इस मुक़ाबले में भारत के 3-0 की अजेय बढ़त ले लेने के बाद मिश्रित व महिला युगल मैच खेलने की ज़रूरत नहीं पड़ी. इससे पहले भारत ने स्कॉटलैंड को हराया था. इस जीत से उत्साहित सायना नेहवाल ने कहा कि यह वाकई बहुत बड़ी उपलब्धि है. ग़ौरतलब है कि भारतीय टीम पिछले साल प्ले ऑफ मुक़ाबले में फ्रांस से हार गई थी. बहरहाल, भारत के अच्छे प्रदर्शन का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि उसने टूर्नामेंट के चार मुक़ाबलों में 18 में से सिर्फ एक मैच गंवाया. इतना ही नहीं, इस टूर्नामेंट से यह भी साबित हुआ कि सायना अपनी चोट से उबर गई हैं. जैसा कि उन्होंने ख़ुद भी बताया कि कंधे की चोट अब ठीक हो गई है, जिससे इस टूर्नामेंट में अच्छा खेल दिखाने का मौका मिला. यह सच भी है. बीजिंग ओलंपिक में जैसा जानदार खेल उन्होंने दिखाया था, पिछले कुछ मैचों में उसकी झलक भी देखने को नहीं मिल रही थी. सायना के मौजूदा खेल से उनके कोच पी. गोपीचंद भी बेहद ख़ुश हैं. वैसे उन्होंने इस टूर्नामेंट में बेहतर खेल दिखाने के लिए सभी भारतीय शटलरों की जमकर सराहना की.

रास नहीं आते विदेशी कोच!

भारतीय हॉकी को फिर नज़र लग गई. लगता है कि भारतीय टीम के ग्रह-नक्षत्रों का विदेशी कोच के साथ तालमेल ही नहीं बैठता. भारतीय हॉकी में गिल युग के ख़ात्मे के बाद सब कुछ पटरी पर आता दिख रहा था. कप्तान संदीप सिंह और स्वदेशी कोच हरेंद्र सिंह के बीच बेहतर तालमेल से अच्छे परिणाम मिलने लगे थे. अभी हाल में ही टीम तेरह साल बाद अज़लान शाह कप जीतकर आई थी. इसके बाद उम्मीदें थीं कि बढ़ती ही जा रही थीं. लेकिन तभी स्पेन के जोसे ब्रासा को मुख्य कोच बना दिया गया. कहा गया कि वह मॉडर्न हॉकी के बड़े उस्ताद हैं. लेकिन उनके उस्तादी दिखाने से पहले ही टीम ने एशिया कप में नाक कटा दी. मलेशिया में खेले गए पुरुष एशिया कप हॉकी टूर्नामेंट में खिताबी हैट-ट्रिक बनाने का सपना चकनाचूर हो गया. टूर्नामेंट में भारत पांचवें स्थान पर रहा. इस टूर्नामेंट में भारत की शुरुआत ही बेहद घटिया रही. पूल-बी में अपने पहले ही मैच में भारत चिर प्रतिद्वंद्वी पाकिस्तान से 2-3 से हार गया. भारत को सेमीफाइनल में पहुंचने के लिए चीन से अपना दूसरा मैच हर हाल में जीतना था, लेकिन टीम चीन की दीवार नहीं लांघ सकी. चीन ने उसे 2-2 की बराबरी पर रोक दिया. इससे सेमीफाइनल में जगह बनाने से भारत चूक गया. इसके साथ ही उन तमाम दावों की भी कलई खुल गई, जिनमें अपनी कमज़ोरियों को काबू में कर लेने की बातें कही जा रही थीं. अंतिम क्षणों में गोल खाने की कमज़ोरी एशिया कप में फिर दिखी. चीन के ख़िलाफ़ मैच में हाफ टाइम तक भारत दो गोलों से आगे था और उसे मैच आसानी से जीत लेना चाहिए था. लेकिन सेमीफाइनल में स्थान बनाने के लिए करो या मरो वाले इस मैच के दूसरे हाफ में भारत दो गोल खा गया. यानी पुरानी बीमारी छूटने का नाम ही नहीं ले रही है.

लगता है कि भारतीय टीम की ऐसी कमज़ोरियों के बारे में नए बनाए गए मुख्य कोच स्पेन के होजे ब्रासा भी अच्छी तरह जानते हैं. इसीलिए वह बार-कह रहे हैं कि लोग उनसे बहुत अधिक उम्मीद न रखें. हालांकि भारतीय हॉकी को फिर से टॉप पर पहुंचाने का उनका सपना आज भी बरकरार है. वह इससे बहुत खुश हैं कि जीपीएस सिस्टम, हार्ट मीटर और बॉल थ्रोइंग मशीन जैसे जिन आधुनिक उपकरणों की मांग उन्होंने की थी, उन्हें भारतीय खेल प्राधिकरण यानी साई ने मान लिया है. वह भारत को सफलता दिलाने के लिए परंपरागत एशियाई हॉकी शैली और मॉडर्न तकनीक में तालमेल पर काम करेंगे. लेकिन लगता है कि उनकी शुरुआत ही ग़लत हो गई है. ब्रासा के आने के बाद पहले ही टूर्नामेंट में टीम ने जिस तरह घटिया खेल दिखाया है, उससे फिर यही लगता है कि भारत के लिए विदेशी कोच शायद शुभ नहीं रहते.चाहे वह आस्ट्रेलिया रिक चार्ल्सवर्थ रहे हों या जर्मनी के गेर्राड रॉक. ग़ौरतलब है कि रॉक भारतीय हॉकी के इतिहास में विदेशी कोच बनने वाले पहले व्यक्ति थे. इन दिनों वह उस बांग्लादेश के कोच हैं, जिसे एशिया कप में ही अंतिम पूल मैच में भारत ने 11-1 से बुरी तरह पराजित कर डाला.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

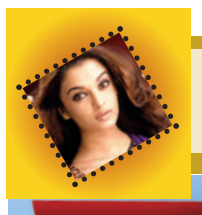

दुनिया

रिश्ते अजीब होते हैं यहां पर...

सोनिका अग्रवाल

बॉलीवुड में रिश्ते भी कम फिल्मी नहीं होते. पल में तोला, पल में माशा. इसमें बातचीत होती है, लेकिन डॉयलाग की शक्ल में. उसमें कभी रोमांस होता है, कभी ट्रेजडी तो कभी ढिशुम-ढिशुम. एक की सफलता दूसरे को खलनायक जैसी पीड़ा देती है. दोस्ती की शुरुआत भी कई बार गांठ से होती है. यानी असल ज़िंदगी में भी फिल्मी सितारे गाहे-बगाहे किरदार की तरह ही व्यवहार करते रहते हैं.

आलम यह है कि यहां प्रेम के रंग-रूप भी हिट-फ्लॉप फिल्मों के हिसाब से बदलते रहते हैं. ईगो तो लगभग सबका ही प्रिय हथियार होता है. आमतौर पर समय के साथ सब कुछ बदलता है, पर बॉलीवुड में समीकरण दौलत-शोहरत के बल पर बदलते हैं. अब किंग ख़ान को ही लें. लंबे समय से जुबानी जंग में उलझे रहने वाले शाहरुख़ और आमिर ख़ान ने पिछले दिनों एक साथ मंच पर आकर दुश्मनी ख़त्म कर दोस्ती की नई शुरुआत का संकेत दिया. लेकिन यह भेद खुलने में अधिक समय नहीं लगा कि दोनों ने यह दोस्ती हाथ में खंजर रखकर ही की थी.

पुरानी कहावत है कि झगड़े अमूमन पैसे, ज़मीन-जायदाद और लड़की के कारण होते हैं. यह बात बॉलीवुड पर भी तो सौ फीसदी लागू होती है. कुछ समय पहले जब सुपरस्टार की दौड़ में शाहरुख़ सबसे आगे चल रहे थे, तब अनिल कपूर से लेकर संजय दत्त, गोविंदा, आमिर, सलमान तक सभी को जलन होती थी. अपने समकालीन अभिनेताओं में शाहरुख़ आगे इसलिए निकल गए कि वह औरों की तुलना में काफी विनम्र माने जाते थे. लेकिन सफलता मिलते ही उनकी विनम्रता कहीं खो गई. उनकी छवि अचानकर अहंकारी युवक की बन गई. एक पुरस्कार समारोह में बैठने की जगह को लेकर अमिताभ बच्चन के साथ हुए विवाद ने उनकी इस छवि को और पुख्ता ही किया. बॉलीवुड में लोगों ने अचानक शहंशाह और बादशाह के बीच शीतयुद्ध को महसूसना शुरू कर दिया. हद तो तब हो गई, जब एक दिन आमिर अपने कुत्ते का नाम शाहरुख़ रख कर उससे पैर चटवाने लगे. तभी सल्लू मियां सोनी चैनल पर अपने शो-दस का दम-को शाहरुख़ के शो-क्या आप पांचवीं पास से तेज़ हैं-से ज़्यादा सफल साबित करने के चक्कर में उनसे हाथापाई पर उतर आए. ऐसे मामलों में हीरोइनें भी कुछ कम नहीं हैं. नकचढ़ी अभिनेत्रियों में आजकल सबसे अव्वल करीना कपूर को माना जा रहा है. अपने को-स्टार के साथ उनकी अक्सर लड़ाई हो जाती है. फिल्म अजनबी के दौरान ड्रेस को लेकर बिपाशा को उन्होंने इतना बुरा-भला कह दिया कि बाद में कई सालों तक बिपाशा ने उनके साथ काम ही नहीं किया. फिल्म मुझसे दोस्ती करोगे के दौरान रानी मुखर्जी से, एतराज के दौरान प्रियंका चोपड़ा से, 36 चाइना टाउन के दौरान तनुश्री दत्ता से, दोस्ती-फ्रैंड्स फॉरएवर के दौरान लारा दत्ता से भी उनकी लड़ाई हो गई थी, जिसकी टीस आजतक बनी हुई है. हालांकि बेबो के विपरीत उनकी बड़ी बहन लोलो यानी करिश्मा कपूर की छवि हमेशा एक शालीन अभिनेत्री की बनी रही. इस तरह के किस्से वैसे अक्षय कुमार, प्रीति जिंटा, अनिल कपूर, रानी मुखर्जी, सुनील शेट्टी आदि के भी कम नहीं हैं. लेनदारी, देनदारी, चेक बाउंसिंग, डेट्स की समस्या आदि ऐसे विवाद हैं जिनसे कोई भी स्टार अछूता नहीं रह पाता. हीरोइनों को लेकर स्टारों में झगड़े के तो अनगिनत उदाहरण हैं. कौन नहीं जानता कि वैजयंती माला, मधुबाला और जीनत अमान के कारण राज कपूर, दिलीप कुमार और देव आनंद कभी दोस्त नहीं बन पाए. देव आनंद ने अपनी आत्मकथा-रोमांसिंग विद लाइफ-में जीनत अमान के लिए एक जगह लिखा है कि वह उनपर मुग्ध हो गए थे, पर सत्यम शिवम सुंदरम की जब हीरोइन बनाने के बहाने राज कपूर उन्हें अपने खेमे में ले उड़े. आज भी ऐसे किस्से आए दिन सुनने को मिल जाते हैं. जैसे सलमान खान, विवेक ओबेराय और अभिषेक बच्चन. कौन नहीं जानता कि इनके रिश्तों में खटास की वजह सिर्फ़ और सिर्फ़ ऐश्वर्या राय हैं.

ऐसे ही करीना कपूर के कारण सैफ अली और शाहिद कपूर एक-दूसरे को देखना नहीं चाहते. वहीं बिपाशा बसु को खोने वाले डिनो मोरिया आज तक जॉन अब्राहम के साथ सहज नहीं हो पाते. अंतरा माली ने रामगोपाल वर्मा और उर्मिला मातोंडकर के रिश्ते पर कैंची चला दी थी, तो रामू और अंतरा के रिश्ते को निशा कोठारी की नज़र लग गई. खेमेबाजी ने भी बॉलीवुड में खूब रिश्ते बनाए और बिगाड़े. आलम यह है कि जब एक बैनर कुछ ख़ास स्टारों, डायरेक्टरों के साथ काम करता है, तो दूसरे उसके आलोचक बन जाते हैं. पहले तो इन कैंपों के पीछे नामी निर्माता-निर्देशक होते थे, पर अब बड़े हीरो के नाम पर कैंप बनते हैं. यश चोपड़ा कैंप, बी.आर कैंप, आर.के.कैंप, प्रसाद कैंप आदि के जमाने तो कब के लद गए. अब ज़माना बिग-बी, किंग ख़ान, खिलाड़ी अक्षय कुमार, आमिर-सलमान ख़ान जैसे कैंपों का है.

sonika.chauthiduniya@gmail.com

ऐसी दीवानगी देखी नहीं कहीं

प्रीति जिंटा की फिल्में भले कम आ रही हो, लेकिन उनकी लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है. उनके प्रशंसक हर उम्र और क्षेत्र से हैं. आईपीएल के कारण जहां वह खेलप्रेमियों के बीच लोकप्रिय हैं, वहीं अपनी ख़ूबसूरती और लाजवाब अदाकारी से वह हिंदी सिनेमा के दर्शकों के दिलों पर सालों से राज कर रही हैं. इधर हाल में उनके प्रशंसकों में कुछ नए नाम शामिल हुए हैं, जिनमें आस्कर विजेता फिल्म *स्लमडॉग मिलिनेयर* के बाल कलाकार भी हैं. *स्लमडॉग* की बाल कलाकार रूबीना अली आज ख़ुद बच्चों के लिए आदर्श बन चुकी है, लेकिन वह अपनी आदर्श प्रीति जिंटा को मानती हैं. अपने पिता के हाथों कथित तौर पर बेचे जाने वाली रूबीना से जब पूछा गया कि वह अपने जीवन में किस अभिनेत्री की तरह बनना चाहेगी, तो उसने तपाक से कहा-प्रीति जिंटा. दक्षिण अफ़्रीका में चल रहे आईपीएल-2 में अपनी टीम किंग्स इलेवन पंजाब का हौसला बढ़ाने में जुटी प्रीति भी यह सुन कर ख़ुश हो गईं. उन्होंने इसका ख़ूबसूरत सा जवाब में दिया. उन्होंने रूबीना को एक साहसी और क़ाबिल लड़की कहकर सराहा. प्रीति ने बताया कि *स्लमडॉग* में रूबीना का अभिनय उन्हें काफी अच्छा लगा. प्रीति को विश्वास है कि वह अपने मेहनत के बल पर जीवन में बहुत आगे जाएंगी.

इस तरह जहां प्रीति ने रूबीना के लिए बेहतर जीवन की कामना की, वहीं यह नन्हीं स्टार भी आईपीएल में प्रीति की टीम के लिए दुआएं कर रही है. जिस दिन किंग्स इलेवन का मैच रहता है, रूबीना का मन कहीं लगता ही नहीं है. इसलिए नहीं कि वह क्रिकेट की दीवानी है, बल्कि इसलिए कि वह प्रीति को हमेशा चहकती हुई देखना चाहती है.

अब उस बच्ची को कौन बताए कि प्रीति को चहकते हुए देखना कौन नहीं चाहता. ख़ुद किंग्स इलेवन के क्रिकेटरों, ख़ासकर युवराज सिंह से पूछ कर देख लें. वैसे किंग्स इलेवन के साझीदार और प्रीति के ख़ास दोस्त नेस वाडिया भी दक्षिण अफ़्रीका में उनकी ख़ुशी के लिए ही जमे हुए हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

एकता की योजनाओं में अनेकता

भारतीय टेलीविज़न की दुनिया को बदल देने वाली एकता कपूर अब अपनी दुनिया बदलने पर काम कर रही हैं. छोटे पर्दे पर जब से रियलिटी शो ने सास-बहू वाले धारावाहिकों का क्रेज ख़त्म किया है, तबसे एकता बोर महसूस कर रही हैं. यही कारण है कि उन्होंने एक साथ अनेक योजनाओं पर काम करना शुरू कर दिया है. पहला यह कि वह छोटे पर्दे पर अब कम और बड़े पर्दे पर अधिक ध्यान देंगी. दूसरे, निर्देशक बनना चाहती हैं. तीसरे, फिल्म निर्माण का ए-बी-सी-डी सीखने के लिए वह अमेरिका जाएंगी. लेकिन इन सबसे पहले शुरुआत घर से हो गई है. उन्होंने देर रात की अपनी पार्टियां बंद कर दी हैं. दिन-रात काम करने की आदत सुधार ली है. इसका फल उन्हें यह मिला कि पिता जीतेंद्र ने दो साल बाद वापस घर में जगह दे दी. अब अगला कदम उन्होंने करण जौहर का सहायक बनने का उठाया है. निर्देशन की बारीकियां सीखने के लिए वह पहले संजय लीला भंसाली के पास जाना चाहती थीं, लेकिन अंत में फैसला करण जौहर के पक्ष में किया. इसकी कुछ वजहें भी हैं. एक तो करण से उनकी दोस्ती है. दूसरे, करण की मां को एकता बहुत पसंद हैं. वैसे भी एकता यह सार्वजनिक तौर पर कह चुकी हैं कि करण अगर तैयार हों तो वह उनकी लाइफ पार्टनर बनने को तैयार हैं. ऐसे में यह देखना दिलचस्प होगा कि कहीं यह फैसला उसी योजना के तहत तो नहीं लिया गया है.

गोवारिकर की गोटी लाल

असफल अभिनेता से सफल निर्देशक बने आशुतोष गोवारिकर उन लोगों में हैं, जो लीक से हटकर फिल्म बनाते हैं. पिछले दिनों स्क्रीन पुरस्कार समारोह में फराह ख़ान और उनके भाई साजिद ख़ान के साथ हुए विवाद को लेकर उनकी जितनी चर्चा हुई, उतनी तो जोधा-अकबर के लिए भी नहीं हुई. यह दूसरी बात है कि मंच पर फूहड़ भाषा के इस्तेमाल के ख़िलाफ़ मोर्चा लेने से उनकी काफी सराहना भी हुई है. लेकिन आज वह दूसरी वजहों से सुर्खियों में हैं. खबर है कि लगान, स्वदेश और जोधा अकबर जैसी बड़ी और सफल फिल्में बनाने वाले आशुतोष अब दो सौ करोड़ रुपए की फिल्म बनाने वाले हैं. ज़ाहिर है कि यह फिल्म उनके करियर की सबसे बड़ी फिल्म होगी. उनकी इस ख़ास फिल्म का नाम रखा गया है-बुद्ध. इसमें बुद्ध की भूमिका के लिए किसी विदेशी अभिनेता का चयन किया जाएगा.

गोवारिकर ऐसा चेहरा चाहते हैं जो अंतरराष्ट्रीय स्तर की अपील रखता हो. संभावना है कि किसी ऐसे देसी चेहरे को भी फिल्म में लिया जा सकता है जो विश्वव्यापी अपील रखता हो. फिल्म की स्क्रिप्ट ऑस्कर विजेता डेविड वार्ड लिखेंगे और यह अंग्रेज़ी में होगी.

अनुमान है कि इस फिल्म की शूटिंग 2010 में शुरू हो जाएगी. इस फिल्म का निर्माण डॉ. बी के दी के स्पाइस ग्रुप द्वारा किया जाएगा.

संगीतकार बने भंसाली

अपनी संवेदनशील फिल्मों के लिए संजय लीला भंसाली बॉलीवुड में अलग पहचान रखते हैं. कहानी से लेकर संगीत तक में उनकी फिल्में हमेशा अलग तरह की होती हैं. पहली ही फिल्म ख़ामोशी में संतान के साथ गूंगे-बहरे माता-पिता के रिश्ते की जैसी बुनावट उन्होंने दिखाई थी, वह आज भी बेमिसाल है. संगीत उनकी फिल्मों का एक विशेष पहलू होता है, वह चाहे सुपरहिट फिल्म हम दिल दे चुके सनम और देवदास रही हो या बुरी तरह पिट गई सांवरिया. संगीत की समझ देखिए कि उन्होंने हिंदी फिल्म उद्योग को इस्माइल दरबार और मोंटी शर्मा जैसे संगीतकार दिए. लेकिन उनकी अगली फिल्म-गुजारिश-इस रहस्य से पर्दा उठाने जा रही है कि भंसाली सिर्फ़ संगीत की समझ ही नहीं रखते, बल्कि वह अच्छे संगीतकार भी हैं. जी हां, ह्रतिक रोशन और ऐश्वर्या राय को लेकर बनने वाली फिल्म गुजारिश में संगीत भी ख़ुद देंगे. किसी निर्देशक द्वारा अपनी फिल्म में स्वयं संगीत देने का कोई यह पहला मौका नहीं होगा. इससे पहले राज कपूर, राज खोसला, सुभाष घई भी अपनी फिल्मों में संगीत देकर चौंका चुके हैं. इतना ही नहीं, महान फिल्मकार सत्यजीत रे अपनी सभी फिल्मों का पार्श्व संगीत ख़ुद देते थे. आज के समय में केवल विशाल भारद्वाज इकलौते फिल्मकार हैं जो अपनी फिल्मों का संगीत स्वयं ही देते है. भंसाली गुजारिश के आठ गानों को पहले ही तैयार कर चुके हैं. फिल्म की शूटिंग जुलाई से गोवा में शुरू हो जाने की उम्मीद है.

बधाई हो बॉलीवुड

बॉलीवुड की कई नामचीन हस्तियां केवल फिल्मों तक ही सीमित नहीं रहतीं, वे सामाजिक कार्यों के प्रति भी समर्पित रहती हैं. इन दिनों जॉन अब्राहम, सेलिना जेटली, शिल्पा शेट्टी और मलाइका अरोड़ा ख़ान कुछ ऐसे ही नाम हैं जो सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं. ये सभी आजकल मानवाधिकारों और पशुओं के कल्याण के लिए लोगों को जागरूक करने का काम रहे हैं. इसके लिए वे विभिन्न अभियानों में हिस्सा लेते नज़र आ रहे हैं. दुनिया भर में जीव अधिकारों का अभियान चला रहे संगठन पीपल फॉर द एथिकल ट्रीटमैंट ऑफ एनिमल्स (पेटा) की भारतीय प्रमुख अनुराधा साहनी का कहना है कि पशुओं के अधिकारों के लिए बॉलीवुड की बड़ी-बड़ी हस्तियां अपने व्यस्त कार्यक्रमों को बीच में अधूरा छोड़कर जीव अधिकारों से संबंधी अभियानों में हिस्सा ले रहे हैं. इससे समाज पर सकारात्मक असर पड़ रहा है. यानी यह कहना ग़लत है कि फिल्म वाले सिर्फ नकारात्मक प्रभाव ही छोड़ते हैं. बधाई हो बॉलीवुड.